मानवता और इस्लाम

संकलन

डॉ॰ मुहम्मद अहमद
(संपादक : मासिक व साप्ताहिक कान्ति)

विषय सूची

बिसमिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम

'अल्लाह के नाम से जो बड़ा कृपाशील, अत्यन्त दयावान है।'

दो शब्द

मनुष्य के सहज-स्वाभाविक कर्म अथवा वृत्ति को धर्म कहते हैं। यह मनुष्य के सही और वास्तविक आचार-विचार के समूह का नाम है। जिस प्रकार गुलाब के पुष्प का नैसर्गिक गुण सुवास एवं आकर्षण है, ठीक उसी प्रकार मनुष्य का स्वाभाविक जीवन-कर्म धर्म है। अतः पुष्प और सुवास के अन्तर्सम्बन्धों की भाँति जीवन और धर्म का घनिष्ठ सम्बन्ध है। धर्म मानव के लिए उतना ही आवश्यक है, जितना मछली के लिए जल। इससे यह मालूम हुआ कि धर्म एक है, अनेक नहीं। इसे ही सत्य-धर्म कहा जाता है। धर्म-विरोधी बातों और व्यवस्थाओं को अधर्म कहते हैं। मानव के स्वाभाविक कर्म और स्वेच्छाचार दो अलग-अलग चीज़ें और एक-दूसरे के विपरीत हैं। स्वाभाविक कर्म धर्म है और स्वेच्छाचार अधर्म।

कभी-कभी स्वेच्छाचार में मनुष्य इतना रम जाता है कि वह उसे ही स्वाभाविक कर्म समझने लगता है और उसका अनुगामी बनकर वह अपने जीवन को विभिन्न प्रकार की समस्याओं से ग्रसित कर डालता है। इस प्रकार वह अधर्मगामी बन जाता है। मानवों के मार्गदर्शन और रहनुमाई के लिए उसके पैदा करनेवाले स्रष्टा—ईश्वर ने रसूलों, पैग़म्बरों और अवतारों को भेजा और उन्हें सत्य-धर्म की ओर आमन्त्रित करने का आदेश दिया। इनकी मौलिक शिक्षाएँ एक थीं, सभी मौलिक रूप से एक ही शिक्षा लेकर आए थे, लेकिन स्वार्थी लोगों ने अपने क्षुद्र स्वार्थों की पूर्ति के लिए सत्य-धर्म को बिगाड़ा, उसमें परिवर्तन और परिवर्धन कर डाला। इसके बावजूद करुणामय, कृपाशील ईश्वर ने अपने रसूलों और अवतारों के द्वारा सत्य-धर्म को उसके मौलिक रूप में भेजने का सिलसिला जारी रखा, यहाँ तक कि अन्तिम पैग़म्बर, हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) भेजे गए और ऐसी व्यवस्था कर दी गई कि सत्य-धर्म सुरक्षित रहे। इस प्रकार अब रहती दुनिया तक कोई नया नबी, रसूल या पैग़म्बर आनेवाला नहीं है।

मानव और मानवता को उच्चता प्रदान करना धर्म को अभीष्ट है और इसका श्रेय इस्लाम को प्राप्त है। इस्लाम मानव और मानवता के आरम्भ से है। यह हज़रत आदम (अलैहि॰) से प्रारम्भ हुआ और पहले पैग़म्बर हज़रत आदम (अलैहि॰) बनाए गए। फिर अन्त में हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) के द्वारा अन्तिम रूप से परिष्कृत, समृद्ध और पूर्ण हुआ। मानवता पर इस्लाम के उपकार-ही-उपकार हैं, जिनकी गणना सम्भव नहीं। फिर भी कुछ महत्वपूर्ण विषयों और तथ्यों पर इस पुस्तक में प्रकाश डाला गया है, लेकिन सही अर्थ में मानवता पर इस्लाम की देनों को गिनाने के लिए कई पुस्तकों की आवश्यकता पड़ेगी।

इस पुस्तक को तैयार करते समय पूरी सावधानी और सतर्कता से काम लिया गया है, फिर भी जो सामग्रियाँ प्रस्तुत की गई हैं, उनके सिलसिले में आपसे निवेदन है कि अपनी बहुमूल्य प्रतिक्रियाओं और विचारों से हमें अवश्य अवगत कराएँ।

—डॉ॰ मुहम्मद अहमद
सम्पादक : कान्ति (मासिक/साप्ताहिक)

प्राचीन अरब और भारत

■ प्रो॰ बी॰ एन॰ पाण्डेय

अरबों और भारतवासियों का सम्बन्ध अरबों के मुसलमान होने से बहुत पहले से, यानी हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) के जन्म से कम-से-कम पाँच सौ साल पहले से चला आ रहा था। हज़रत ईसा (अलैहि॰) के जन्म के समय से ही हज़ारों अरब सौदागर भारत के पश्चिमी और पूर्वी बन्दरगाहों पर आकर उतरते थे। ख़ासकर पश्चिम में चाल, कल्याण, सुपारा और मालाबार तट पर अरबों की अनेक बड़ी-बड़ी बस्तियों का उस समय के इतिहास में ज़िक्र आता है। हज़रत ईसा (अलैहि॰) के जन्म से पहले भी श्रीलंका और दक्षिण भारत में अरबों और ईरानियों की अनेक बस्तियाँ मौजूद थीं।

ईरान, अरब, अफ़्रीक़ा और यूरोप के अनेक देशों के साथ भारत का उस समय जितना व्यापार था अधिकतर अरब और ईरानी सौदागरों ही के हाथों में था। रोमन इतिहास लेखक लिखते हैं कि रोम और यूनान के जो जहाज़ उन दिनों भारत आते-जाते थे उनके भी नाविक अधिकतर अरब ही होते थे। भारत और चीन के बीच व्यापार का भी एक ख़ासा हिस्सा अरबों ही के हाथों में था जिसके कारण भारत के पूर्वी तट से भी ये लोग पूरी तरह परिचित थे और वहाँ भी स्थान-स्थान पर इनकी अनेक बस्तियाँ आबाद थीं।

उस समय अरबों का धर्म एक प्राचीन ढँग के मूर्तिपूजकों का धर्म था। वे अपने अलग-अलग क़बीलों के अलग-अलग देवी-देवताओं को मानते थे और उनकी मूर्तियों की पूजा करते थे। उस समय के अनेक सफ़रनामों से साबित है कि ये अरब सरल स्वभाव और उदार चित्त के थे। भारत में उनकी बस्तियाँ ख़ूब ख़ुशहाल थीं।

इसके बाद मुहम्मद (सल्ल॰) के जन्म और इस्लाम के प्रचार का समय आया। अरबों और ख़ासकर अरब व्यापारियों का भारत आना पहले की तरह जारी रहा। अन्तर केवल यह हो गया कि पुराने मूर्तिपूजक अरबों की जगह अब निराकार ईश्वर के उपासक अरबी भारत आने लगे या वही अरबी अब मुसलमान हो गए। उनके साथ-साथ अब एक नए धर्म इस्लाम के नए

विचारों और नए आदर्शों ने भी भारत में प्रवेश किया। उस समय के अरब मुसलमानों और उनके साथ इस्लाम के इस तरह भारत में प्रवेश करने का किसी फ़ौजी हमले से कोई सम्बन्ध न था।

आठवीं सदी का भारत

इस स्थान पर आगे बढ़ने से पहले उस समय के भारत की हालत को संक्षेप में बयान कर देना भी आवश्यक है। ईसा की सातवीं सदी के मध्य में सम्राट हर्षवर्धन की सत्ता का अन्त हुआ। उत्तर भारत टुकड़े-टुकड़े होकर अनेक छोटी-छोटी रियासतों में बँट गया। राजपूतों ने पश्चिम से चलकर उत्तर-पूर्व में और मध्य भारत में अनेक छोटी-छोटी रियासतें क़ायम कर लीं। अनेक नई जातियाँ अपने को राजपूत कहने लगीं। यहाँ तक कि मुसलमानों के आने से ठीक पहले पंजाब से दक्षिण तक और बंगाल से अरब सागर तक क़रीब-क़रीब सारा देश अलग-अलग राजपूत सरदारों के शासन में आ गया। किन्तु कोई प्रधान केन्द्रीय शक्ति इन सब छोटी-बड़ी रियासतों को एक सूत्र में बाँधनेवाली न थी, और आए दिन इन रियासतों के बीच अपना-अपना राज्य बढ़ाने के लिए एक-दूसरे से संग्राम होते रहते थे यानी, एक प्रधान और प्रबल भारतीय साम्राज्य की जगह एक-दूसरे के प्रतिस्पर्धी और एक-दूसरे से स्वतन्त्र अनेक छोटे-बड़े राजा भारत पर शासन करते थे और देश की राजनीतिक या राष्ट्रीय एकता केवल स्वप्न मात्र थी।

पुराने साम्राज्यों के केन्द्र—मगध, पाटलिपुत्र, राजगृह इत्यादि—खण्डहर दिखाई दे रहे थे। वैशाली, कुशीनगर, केड़िया, रामग्राम, कपिलवस्तु और श्रावस्ती, जिनके नाम बौद्ध इतिहास में मशहूर हो चुके थे, अब बरबाद दिखाई देते थे और देश के राजनीतिक और आर्थिक जीवन के दूसरे केन्द्रों ने उनकी जगह ले ली थी।

धर्म के क्षेत्र में भी भारत का वह समय अवनति का समय था। बुद्ध के निर्वाण से ढाई सौ साल के अन्दर, यानी हज़रत ईसा (अलैहि॰) के जन्म से क़रीब ढाई सौ साल पहले, बौद्ध धर्म हिन्दू धर्म का स्थान ले चुका था। किन्तु जिन ब्राह्मण पुरोहितों और उच्च जातियों के विशेषाधिकारों पर बौद्ध धर्म ने

हमला किया था उनकी ओर से विद्रोह की आग बराबर सुलगती रही। धीरे-धीरे मूर्ति-पूजा और प्राचीन हिन्दू कर्मकांडों ने बौद्ध धर्म में भी प्रवेश करना शुरू किया। उत्तर भारत में महायान सम्प्रदाय की नींव रखी गई, जिसमें बुद्ध भगवान के अलावा अनेक बोधिसत्वों की और ख़ासकर 'अमिताभ' (महात्मा बुद्ध) की पूजा होने लगी। बौद्ध मन्दिरों का समस्त कर्मकांड हिन्दू मन्दिरों के ढँग पर ढल गया। शुरू के बौद्ध मत ने जो स्थान संस्कृत से छीनकर जनता की भाषाओं—प्राकृत या पाली—को दिया था, वह अब महायान सम्प्रदाय में फिर से संस्कृत को प्रदान किया गया। ज्ञान-मार्ग की जगह बहुत दरजे तक कर्मकांड और पूजा-भक्ति ने ले ली।

भारत में इस्लाम धर्म का प्रवेश

ठीक उस समय जबकि इस देश की यह हालत थी, इस्लाम ने भारत में प्रवेश किया। इतिहास से पता चलता है कि इस धर्म का भारतवासियों ने उसी प्रेम के साथ स्वागत किया जिस प्रेम के साथ सैकड़ों साल पहले से वे अरब सौदागरों का स्वागत करते आए थे। एक बार भारतवर्ष की सीमाओं के अन्दर प्रवेश करते ही इस्लाम भी भारत के असंख्य सम्प्रदायों में से एक गिना जाने लगा। इतिहास लेखक रालैंडसन लिखता है कि सातवीं सदी के अन्त में मुसलमान अरब मालाबार तट पर आकर बसने लगे थे। इतिहास लेखक स्टराक लिखता है कि—"सातवीं सदी से ही ईरानी और अरब सौदागर भारत के पश्चिमी तट पर अलग-अलग बन्दरगाहों में बड़ी संख्या में आकर बसने लगे। ये लोग इसी देश की स्त्रियों के साथ शादियाँ कर लेते थे। इनकी बस्तियाँ मालाबार में बड़ी-बड़ी और महत्वपूर्ण थीं, क्योंकि मालूम होता है वहाँ बहुत शुरू ज़माने से राज्य की यह एक नीति चली आ रही थी कि बन्दरगाहों को हर तरह से सुविधाएँ दी जाएँ।"[1]

धीरे-धीरे दक्षिण भारत में अरबों का प्रभाव बढ़ता गया। राज्य की ओर से उन्हें व्यापार करने और ज़मीन ख़रीदने के साथ-साथ अपने धर्म का प्रचार करने की भी पूरी सुविधाएँ दी जाने लगीं। नवीं सदी तक ये लोग समस्त पश्चिम तट पर फैल गए। भारत में उस समय बौद्ध मत और जैन मत का

हिन्दू मत और उसके नए सम्प्रदायों शैव और शाक्त मत के साथ भीषण संघर्ष जारी था। कर्मकांड और रूढ़िवाद से ग्रस्त हिन्दू सम्प्रदायों के मुक़ाबले में, इस्लाम के सीधे-सादे और सरल सिद्धान्तों की ओर, और उसके अन्दर मनुष्य मात्र की समता के विचार की ओर लोगों का ध्यान ज़ोरों के साथ आकर्षित हुआ। इस्लाम के विरुद्ध पक्षपात या उसके साथ द्वेष का कोई कारण उस समय तक मौजूद न था। नवीं सदी के शुरू में ही मालाबार के हिन्दू राजा, चेरामन पेरुमल ने, जिसकी राजधानी कोंडंगलूर थी, इस्लाम स्वीकार कर लिया।[2] राजा का नाम अब्दुर-रहमान सानी रखा गया। इस्लाम मत स्वीकार करने के बाद अब्दुर-रहमान अरब गया। चार साल बाद अरब में उसकी मृत्यु हुई। अरब से उसने कई मुसलमान विद्वानों और प्रचारकों को भारत भेजा, उनके माध्यम से अपने उत्तराधिकारियों को शासन-प्रबन्ध के लिए हिदायतें दीं और यह भी हिदायत दी कि देश के अन्दर नए मत के प्रचार में अरब विद्वानों को सहायता दी जाए। चेरामन पेरुमल के उत्तराधिकारियों ने बड़े हर्ष के साथ अरब विद्वानों का स्वागत किया और उनके आदेशानुसार मालाबार तट पर अल्लाह की इबादत के लिए ग्यारह नई मस्जिदें बनवाईं।

कालीकट के सामुरी राजा और तिरुवांकुर के महाराजा भी उसी चेरामन पेरुमल के वंशज और उत्तराधिकारी थे। इन दोनों स्थानों पर उस ग्यारह सौ साल पहले की घटना की याद में कम-से-कम सन् 1912 ई॰ तक यह रिवाज चला आता था कि जिस समय नया सामुरी राजा गद्दी पर बैठता था तो अरबों की तरह उसका मुंडन किया जाता था। उसे अरबों के से कपड़े पहनाए जाते थे, एक मोपला उसके सिर पर ताज रखता था, राजतिलक के बाद उसे जाति से बाहर समझा जाता था। अपने घर के लोगों के साथ भी वह सहभोज न कर सकता था और कोई नायर उसे स्पर्श नहीं करता। समझा यह जाता है कि हर सामुरी चेरामन पेरुमल के अरब से लौटने के इन्तिज़ार में केवल उसके एक प्रतिनिधि की हैसियत से उसकी जगह तख़्त पर बैठता है। तिरुवांकुर के महाराजाओं की गद्दी पर बैठते समय जब खड्ग हाथ में दी जाती थी तब उन्हें यह कहना पड़ता था—"मैं इस खड्ग (तलवार की शक्ल का एक प्राचीन अस्त्र) को उस समय तक रखूँगा, जब तक कि मेरा वह चचा,

जो मक्का गया है, लौट न आए।"[3]

सामुरी ने अपने राज में अरबों की हर तरह की सहायता की। कोई नायर किसी नम्बूदरी ब्राह्मण के बराबर में न बैठ सकता था, किन्तु कोई भी अरब बैठ सकता था। मुसलमानों का धर्मगुरु थंगल सामुरी के साथ-साथ पालकी में निकलता था। अरबों और दूसरे मुसलमानों की मदद से सामुरी ने अपने राज्य की सीमाओं को बढ़ाया और जिससे राज्य की ख़ुशहाली में बहुत बड़ी उन्नति हुई। आजकल का कालीकट का नगर उस समय के एक मालाबार क़ाज़ी ही का बसाया हुआ है।

मालाबार के राजाओं की जल सेना के सेनापति अधिकतर अरब होते थे जो 'अली राजा' कहलाते थे। इस्लाम धर्म के प्रचार में भी सामुरी ने सहायता दी। यहाँ तक कि उसने आज्ञा दे दी कि हर हिन्दू मल्लाह के घर के कम-से-कम एक लड़के को बचपन से अरबों की तरह नाविक शिक्षा दी जाए। यहीं से आजकल के मोपलों की उत्पत्ति हुई। मोपला शब्द का अर्थ महापिल्ला यानी ज्येष्ठ पुत्र है।[4]

भारत के पूर्वी तट पर भी मुसलमानों की बस्तियाँ और उनका महत्व बढ़ता चला गया। एक मुसलमान फ़क़ीर, नजद वली के प्रभाव से ग्यारहवीं सदी में मदुरा और तिरुच्चिरापल्ली के इलाक़ों में अनेक लोगों ने इस्लाम मत स्वीकार किया। यह नजद वली टर्की का एक शहज़ादा था, जो फ़क़ीर हो गया था और अरब, ईरान और उत्तर भारत से होता हुआ तिरुच्चिरापल्ली पहुँचा था, जिसे उस समय त्रिचूर कहते थे। बारहवीं सदी में एक-दूसरे फ़क़ीर, सैयद इबराहीम शहीद के असर से भी अनेक लोगों ने इस्लाम स्वीकार किया। इसी तरह बाबा फ़ख़रुद्दीन इत्यादि और बहुत-से इस्लाम धर्म प्रचारकों के नाम उस समय के इतिहास में मिलते हैं। बाबा फ़ख़रुद्दीन के प्रभाव से पुन्नुकोंडा के हिन्दू राजा ने इस्लाम स्वीकार किया। यह भी साफ़ पता चलता है कि इन अरबों की कोशिश से भारत और ख़ासकर दक्षिण भारत के व्यापार और ख़ुशहाली में बहुत बड़ी तरक़्क़ी हुई। दक्षिण के हिन्दू राजाओं की ओर से चीन जैसे दूर-दूर के देशों में मुसलमान एलची और राजदूत भेजे जाते थे। अनेक हिन्दू दरबारों में मुसलमान मंत्री और प्रधानमंत्री

थे। अनेक प्रान्तों के शासक मुसलमान नियुक्त किए जाते थे। हिन्दू राजाओं के अधीन बड़ी-बड़ी मुसलमान सेनाएँ थीं।

ग्यारहवीं सदी के क़रीब खम्भात में कुछ हिन्दुओं ने मुसलमानों की एक मस्जिद पर हमला करके उसे गिरा दिया। राजा सिद्धराज ने तहक़ीक़ात करके अपराधियों को दण्ड दिया और मुसलमानों के लिए अपने धन से एक नई मस्जिद बनवा दी। ग्यारहवीं सदी में गुजराती बोहरा के शिया धार्मिक नेता मुल्ला जी ने यमन (अरब) से आकर गुजरात में रहना शुरू किया। उसी समय के निकट नूरुद्दीन ने गुजरात के कुनबियों, खेरवाओं और काडियों को इस्लाम में शामिल किया। मुसलमान संत और फ़क़ीर आठवीं सदी से लेकर पन्द्रहवीं सदी तक बराबर उत्तर से लेकर दक्षिण तक और पूरब से लेकर पश्चिम तक भारत के विभिन्न भागों में आकर बसते रहे, जिनके ऊँचे चरित्र और इस्लाम के सरल धार्मिक सिद्धान्तों के कारण उस धार्मिक अव्यवस्था के युग में स्थान-स्थान पर अगणित भारतवासियों ने इस्लाम धर्म स्वीकार करना शुरू कर दिया। अभी तक यदि उत्तर भारत के उन ग्रामों में घूमा जाए जिनकी अधिकांश आबादी मुसलमान है, तो दरियाफ़्त करने पर मालूम होगा कि वहाँ के लोगों के इस्लाम स्वीकार करने का कारण हमेशा किसी-न-किसी समय किसी-न-किसी त्यागी और संयमी मुसलमान फ़क़ीर का उनके अन्दर सहवास था।

भारत में इस्लाम का प्रचार

निस्सन्देह हर युग और हर देश में प्रजा के ऊपर राजा या शासकों के धार्मिक विचारों का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक और अनिवार्य है। यदि सम्राट अशोक न होता तो बौद्ध धर्म का भारत के एक कोने से दूसरे कोने तक इस तरह फैल सकना शायद इतना आसान न होता। इसी तरह यदि सम्राट समुद्रगुप्त और चन्द्रगुप्त (दूसरा) वैष्णव मत के पोषक और सम्राट यशोधर्म देव (विक्रमादित्य) शैव मत के पोषक न होते तो शैव मत का बौद्ध मत को भारत से निकाल बाहर कर सकना इतना सरल न होता। शैव और शाक्त मतों के साथ बौद्ध मत और जैन मत के संघर्ष के दिनों में भी इस तरह बल

प्रयोग की अनेक मिसालें मिलती हैं। किन्तु इतिहास से बिलकुल साफ़ पता चलता है कि इस देश के ऊपर मुसलमानों के हमलों से बहुत पहले इस्लाम इस देश में प्रवेश कर चुका था। इस्लाम इस देश में महमूद ग़ज़नवी के हमले से भी पहले काफ़ी फैल चुका था और इस्लाम के भारत में फैलने का ख़ास कारण उस समय के इस्लाम के प्रचारकों का त्याग, उनकी सच्चरित्रता और इस्लाम के स्पष्ट और सीधे-सादे सिद्धान्त थे, जो भारत के अनेक हिन्दू सम्प्रदायों के मुक़ाबले में जनसामान्य के लिए अधिक सरल, हितकर और सुसाध्य थे। भारत के जिन लोगों ने उस समय इस्लाम स्वीकार किया, उनमें अधिकांश पिछड़े वर्ग के लोग थे जो उस समय की भारतीय वर्ण-व्यवस्था को अपने लिए अन्यायपूर्ण अनुभव करते थे और हिन्दुओं की किसी उपजाति का इस्लाम स्वीकार करना ठीक वैसा ही था जैसा उनका वैदिक मत को छोड़कर बौद्ध मत स्वीकार करना या बौद्ध मत को छोड़कर वैष्णव मत या शैव मत स्वीकार करना या चीनियों या बरमियों का अपने-अपने मतों को छोड़कर भारतीय बौद्ध मत को स्वीकार करना।

भारत की क़रीब एक चौथाई आबादी के धीरे-धीरे इस्लाम स्वीकार करने में राजनीतिक दबाव या ज़बरदस्ती का हिस्सा कहाँ तक था, इसके सम्बन्ध में हम केवल दो-एक इतिहास लेखकों की सम्मतियाँ नीचे देते हैं। भारतीय मुसलमानों का ज़िक्र करते हुए इतिहास लेखक आरनॉल्ड लिखता है—

"इनमें अधिकांश ऐसे लोग हैं जिन्होंने अपनी स्वतन्त्र इच्छा से इस्लाम स्वीकार किया।"[5]

एक दूसरा इतिहास लेखक, टाउन्सेंट लिखता है—"इस मत के इस देश में फैलने का ख़ास कारण ज़ोर-ज़बरदस्ती नहीं है।"[6]

एक-दूसरे स्थान पर यही लेखक भारतीय मुसलमानों के विषय में लिखता है—"इन तमाम मुसलमानों में से 90 फ़ीसदी में भारतीय रक्त है, वे इस देश के वैसे ही भारतीय नागरिक हैं जैसे हिन्दू। उनमें बहुत-से पुराने हिन्दू अन्धविश्वास भी अभी तक मौजूद हैं। वे केवल इसलिए मुसलमान हैं क्योंकि उनके पूर्वजों ने अरब के उस महापुरुष (मुहम्मद) का दीन (धर्म)

स्वीकार किया था।"[7]

और आगे चलकर यही विद्वान लिखता है कि भारत में मुसलमानों का राज क़ायम हो जाने के बाद भी प्रजा को ज़बरदस्ती मुसलमान बनाना मुसलमान शासकों के हित और उनकी रुचि, दोनों के विरुद्ध था। वह लिखता है–

"इस्लाम का प्रचारक बल प्रयोग न कर सकता था और जिन हमला करनेवालों ने यहाँ पर विजय प्राप्त की और यहाँ बस गए, उन्होंने भी प्रायः कभी भी बल प्रयोग करना नहीं चाहा। उसकी वजह भी काफ़ी थी और वह वजह यह थी कि बल प्रयोग करने में उनका हित न था। वे अपना राज, बादशाहतें या साम्राज्य क़ायम करना चाहते थे, न कि अपनी ही टैक्स देने वाली प्रजा के साथ घरेलू युद्ध छेड़ना या इस विशाल प्रायद्वीप की योद्धा जातियों की अदम्य शत्रुता को अपने विरुद्ध भड़का देना। ये जातियाँ हिन्दू थीं और हिन्दू रहीं।"[8]

तेरहवीं सदी के अन्त से सोलहवीं सदी के प्रारम्भ तक जबकि भारत में अपना साम्राज्य क़ायम करने के लिए मुसलमानों के प्रयत्न जारी थे, उस समय के बारे में सर अलफ़्रेड लायल लिखता है–"मुसलमान नरेश आमतौर पर लड़ाई में इतने मशग़ूल रहते थे कि वे धर्म प्रचार की ओर अधिक ध्यान न दे सकते थे, या यह कि उन्हें लोगों को मुसलमान बनाने की अपेक्षा उनसे ख़िराज वसूल करने की अधिक चिन्ता रहती थी।"[9]

ज़ैनुल-आबिदीन, शेरशाह सूरी, बाबर, अकबर, जहाँगीर, औरंगज़ेब ही नहीं बल्कि अधिकांश मुसलमान शासकों के पचासों फ़रमान और आज्ञाएँ इस विषय की नक़ल की जा सकती हैं जिनसे मालूम होता है कि वे अपनी हिन्दू और मुसलमान प्रजा को एक दृष्टि से देखते थे और राज्य-शासन में किसी तरह का धार्मिक दख़ल अपने लिए हितकर न समझते थे।

सन्दर्भ

1. Logan : Malabar, Vol. (i) p. 425
2. Innes : Malabar and Anjengo District Gazetteer, p. 190

3. Quadir Husain Khan : South Indian Musalmans, Madras Christian College Magazine (1912-13), p. 241
4. Logan : Malabar, Vol: (i) p. 231
5. T. W.Amold : By far the majority of them entered the pale of Islam of their own free will–The Preaching of Islam, 1913, p. 255
6. M. Townsend "Its spread as a faith is not due mainly to compulsion".Asia and Europe, London, 1911, p. 44
7. "Ninety percent of the whole body of the Muslims are Indians by blood, as much children of the soil as the Hindus, retaining many of the old pagan superstitions, and only mussalmans because their ancestors embraced the faith of the Great Arabian". Ibid, p. 43
8. The missionary of Islam could not use force and...as to the invaders who conquered and remained, they seldom or never wished to use it, for the sufficient reason that it was not in their interest. They wanted to found principalities, or Kingdoms or an empire, not to wage an internecine war with their own taxpaying subjects or to arouse against themselves the unconquerable hostility of the warrior races of the gigantic peninsula who were and who remain Hindus–Ibid, p. 45
9. "Generally too busily engaged in fighting to pay much regard to the interests of religion, or else thought more of the exaction of tribute than of the work of conversion.–Asiatic Studies, By Sir Alfred Lyall.

इस्लाम : स्वस्थ समाज का पक्षधर

■ जयकृष्ण मेहता

इस्लाम में इससे बढ़कर इस बात का प्रमाण और क्या मिलेगा कि स्वयं पैग़म्बर हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) का मुसलमानों के लिए निर्देश था कि ऐसे किसी व्यक्ति को अपना रहनुमा या रहबर मत मानो जिसकी कथनी और करनी में मेल न हो। जो ख़ुद तरह-तरह की बुराइयों में लिप्त हो और दूसरों को उपदेश देता फिर रहा हो।

पैग़म्बर हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) के उपदेश का साफ़ और स्पष्ट उद्देश्य यही है कि बुराइयों में लिप्त व्यक्ति किसी भी सूरत में समाज का उच्च स्थान प्राप्त करके समाज में प्रतिष्ठा न पा सके। हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) के प्रिय साथी हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-मसऊद जो इस बात के गवाह हैं कि हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) ने फ़रमाया—"उस ज़ात की क़सम जिसके क़ब्ज़े में मेरी जान है, तुम ज़रूर लोगों को पवित्र जीवन बिताने के लिए कहते रहोगे। बुराइयों से रोकते रहोगे। ज़ालिम का हाथ पकड़ोगे। ज़ालिम को न्याय करने पर विवश करोगे।"

नाजाइज़ तरीक़े से हासिल की गई दौलत ही समाज को हर स्तर पर खोखला कर रही है। आज समाज में जितनी बुराइयाँ हैं वे ग़लत दौलत की देन हैं। यह अवैध दौलत स्वस्थ समाज के निर्माण में सबसे बड़ी रुकावट है। इस्लाम ने नाजाइज़ धन पर सबसे ज़्यादा चोट की है और जाइज़ तथा सही तरीक़े से हासिल की गई आमदनी को सबसे बेहतर माना है। इसलिए इस्लाम में मेहनतकशों का रुतबा है।

एक बार हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) ने एक आदमी से हाथ मिलाया। हाथ मिलाने के बाद उन्हें उस आदमी की हथेलियों में गड्ढे पड़े होने का एहसास हुआ। पूछने पर उस आदमी ने कहा कि "हुज़ूर, सख़्त मेहनत करने से ये गड्ढे पड़ गए हैं।"

हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) ने बड़ी श्रद्धा से उस शख़्स के हाथों को चूम

लिया, क्योंकि वे हाथ ईमानदारी और मेहनत करके अपनी रोज़ी कमानेवाले के हाथ थे।

जबकि इसके विपरीत नाजाइज़ तरीक़े से हासिल की गई दौलत से कोई नेक काम इस्लाम को स्वीकार नहीं। ख़ासकर रिश्वत देने और लेने दोनों को ग़लत माना है और दोनों की सख़्त निन्दा की गई है। उन्हें सज़ा का हक़दार माना गया है तो दूसरी ओर व्यवसाय में ग़लत तरीक़े अपनाकर मुनाफ़ा कमाने की होड़ में लगे व्यवसायियों को सख़्त ताकीद की गई है कि वे ग्राहकों के साथ धोखाधड़ी, झूठ बोलना, नाप-तौल में गड़बड़ी न करें। कालाबाज़ारी करनेवाले व्यवसायियों को ऐसे कार्य से दूर रहने के लिए कहा गया है।

एक बार हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) एक व्यवसायी के क़रीब से गुज़रे। वह अनाज बेच रहा था। उन्होंने अपना हाथ अनाज के अन्दर डाला। अन्दर का हिस्सा पानी से भीगा हुआ था। उन्होंने पूछा—"यह क्या?", व्यवसायी ने जवाब दिया "हुजूर! बारिश में भीग गया है।" उन्होंने कहा, "फिर उसे ऊपर क्यों न रखा?" फिर उसी समय उन्होंने स्पष्ट तौर पर निर्देश दिया कि जो व्यक्ति धोखा करे वह हम में से नहीं यानी मुसलमान नहीं है। इस प्रकार समाज को सन्तुलित रखने के लिए इस्लाम की स्पष्ट मान्यता है कि जब कभी दो पक्षों में विवाद उत्पन्न हो तो यह न देखा जाए कि किस पक्ष के लोग किस धर्म के माननेवाले हैं, बल्कि हमेशा जो उचित हो उसका समर्थन किया जाए और जो अनुचित हो उनका विरोध किया जाए।

इससे ज़ाहिर है कि समाज में ग़लत काम करनेवालों को जनसमर्थन न मिलने के कारण उनका मनोबल टूटेगा और न्यायप्रिय व्यक्ति का मनोबल ऊँचा होगा। अबू-फ़सीला नामक व्यक्ति कहते हैं कि मैंने एक बार हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) से पूछा—"क्या आपने लोगों से कहा है कि मुहब्बत करना बुराई है?", उन्होंने जवाब दिया—"नहीं, बल्कि बुराई यह है कि आदमी जुल्म के मामले में अपनी क़ौम का साथ दे।"

फिर हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) ने अपनी इस बात को और ज़्यादा स्पष्ट करते हुए कहा—"जो व्यक्ति किसी नाजाइज़ मामले में अपने समुदाय की

मदद करता है, उसकी मिसाल ऐसी है, जैसे कि कोई ऊँट कुएँ में गिर रहा है और वह उसकी दुम पकड़कर लटक गया है और ख़ुद को भी गिरा लिया हो।"

इस प्रकार इस्लाम का मूल सिद्धान्त एक स्वस्थ समाज का निर्माण है। इसलिए उसने सामाजिक बुराइयों के ख़ात्मे के लिए हमेशा मुसलमानों को संघर्ष करने की तालीम दी और उन्हें बार-बार यह समझाया कि यह कभी न देखो कि बुराइयों को फैलानेवाला कौन है। अगर वह मुसलमान भी है तो बिना किसी हिचक के उसका अपनी पूरी ताक़त के साथ विरोध करो, ताकि किसी प्रकार का पक्षपात स्वस्थ समाज के निर्माण में बाधक न बने और इस्लाम की किरण जिन पवित्र उद्देश्यों के लिए निकली है वही किरण और वही मूल सिद्धान्त क्षीण न पड़ जाए।

इस्लाम की मान्यता है कि मनुष्य सामान्यतः जो कुछ बाहर देखता-सुनता, समझता और अनुभव करता है वह यथार्थ ज्ञान नहीं है। किन्तु वह भ्रमवश उसी को सच्चा और पक्का ज्ञान मान लेता है। अवास्तविक ज्ञान को सही ज्ञान समझकर और तदनुसार कार्यों को करने के कारण ही मानव अपने मूल उद्देश्य सुख-शान्ति की दिशा में अग्रसर न होकर विपरीत दिशा में चल पड़ता है।

इस्लाम ने इनसान को इनसान होने की हैसियत दी है। क़ुरआन में आया है, "और किसी गरोह की दुश्मनी तुमको इतना उत्तेजित न कर दे कि तुम इनसाफ़ से हट जाओ, इनसाफ़ करो, यही धर्मपरायणता के अधिक अनुकूल है।" (सूरा-5 माइदा, आयत-8) एक और जगह फ़रमाया गया है कि ऐ लोगो जो ईमान लाए हो, इनसाफ़ करनेवाले और ख़ुदा वास्ते के गवाह बनो। (सूरा-4 निसा, आयत-135) मालूम हुआ कि आम इनसान ही नहीं दुश्मनों तक से इनसाफ़ करना चाहिए। दूसरे शब्दों में, इस्लाम जिस इनसाफ़ की दावत देता है, वह सिर्फ़ अपने देश के रहनेवालों के लिए या अपनी क़ौम के लोगों के लिए या मुसलमानों के लिए ही नहीं, बल्कि दुनिया भर के सब इनसानों के लिए है। हम किसी से भी बेइनसाफ़ी नहीं करते, हमारा हमेशा यह रवैया होना चाहिए कि कोई आदमी भी हमसे बेइनसाफ़ी का अन्देशा

न रखे, हम हर जगह हर आदमी के साथ न्याय और इनसाफ़ का ख़याल रखें।

इस्लाम में इनसानी बराबरी की भावनाओं पर सर्वाधिक बल दिया गया है। इस्लाम न सिर्फ़ यह कि किसी रंग व नस्ल के भेदभाव के बग़ैर तमाम इनसानों के बीच बराबरी को मानता है, बल्कि उसे एक महत्वपूर्ण सत्य क़रार देता है। क़ुरआन में अल्लाह ने फ़रमाया है कि "ऐ इनसानो! हमने तुमको एक माँ और एक बाप से पैदा किया।" (क़ुरआन, सूरा-49 हुजुरात, आयत-13) दूसरे शब्दों में इसका मतलब यह हुआ कि तमाम इनसान अस्ल में भाई-भाई हैं, एक ही माँ और एक ही बाप की सन्तान हैं। "और हमने तुमको क़ौमों और क़बीलों में बाँट दिया ताकि तुम एक-दूसरे को पहचानो।" (क़ुरआन, सूरा-49 हुजुरात, आयत-13) यानी क़ौमों और क़बीलों में यह तक़्सीम पहचान के लिए है। इसलिए है कि एक क़बीले या एक क़ौम के लोग आपस में एक-दूसरे से परिचित हों और आपस में सहयोग कर सकें। यह इसलिए नहीं है कि एक क़ौम दूसरी क़ौम पर बड़ाई जताए और उसके साथ घमण्ड से पेश आए, उसको कमज़ोर और नीचा समझे और उसके अधिकारों को छीन ले।

"हक़ीक़त में तुममें इज़्ज़तवाला वह है, जो तुममें सबसे ज़्यादा ख़ुदा से डरनेवाला है।" (क़ुरआन, सूरा-49 हुजुरात, आयत-13) यानी इनसान पर इनसान की बड़ाई सिर्फ़ पाकीज़ा किरदार और अच्छे आचरण के बिना पर है, न कि रंग व नस्ल, ज़बान या वतन की बिना पर। और यह बड़ाई भी इस गरज़ के लिए नहीं है कि अच्छे किरदार और आचरण के लोग दूसरे इनसानों पर अपनी बड़ाई जताएँ, क्योंकि बड़ाई जताना स्वयं में एक बुराई है, जिसको कोई धर्मपरायण और परहेज़गार आदमी नहीं कर सकता और यह इस गरज़ के लिए भी नहीं है कि नेक आदमी के अधिकार बुरे आदमियों के अधिकारों से बढ़कर हों या उसके अधिकार उनसे ज़्यादा हों, क्योंकि यह इनसानी बराबरी के ख़िलाफ़ है।

इसी बात को अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने एक हदीस में बयान फ़रमाया है कि "किसी अरबी को ग़ैर-अरबी पर कोई बड़ाई नहीं है, न ग़ैर-अरबी को

अरबी पर कोई बड़ाई है। न गोरे को काले पर और न काले को गोरे पर कोई बड़ाई है। तुम सब आदम (अलैहि०) की औलाद हो और आदम मिट्टी से पैदा हुए थे।" इस तरह इस्लाम ने तमाम मानवजाति में बराबरी क़ायम की और रंग-नस्ल, भाषा और राष्ट्र की बिना पर सारे भेदभावों की जड़ काट दी। इस्लाम के नज़दीक यह हक़ इनसान को इनसान होने की हैसियत से हासिल है उसके साथ उसकी खाल के रंग या उसकी पैदाइश की जगह या उसकी जन्म देनेवाली नस्ल व क़ौम की बिना पर कोई भेदभाव न बरता जाए। उसे दूसरे के मुक़ाबले में नीच न ठहराया जाए और उसके हुक़ूक़ दूसरों से कमतर न रखे जाएँ। अमेरिका के अफ़्रीक़ी नस्ल के लोगों का मशहूर लीडर "मैलकमइक्स" जो काली नस्ल के बाशिन्दों की हिमायत में सफ़ेद नस्लवालों के ख़िलाफ़ सख़्त कशमकश करता रहा था, मुसलमान होने के बाद जब हज के लिए गया और वहाँ उसने देखा कि एशिया, अफ़्रीक़ा, यूरोप, अमेरिका, भारत हर जगह के और हर रंग व नस्ल के मुसलमान एक ही लिबास में एक खुदा के घर की तरफ़ चले जा रहे हैं, एक ही घर का तवाफ़ कर रहे हैं, एक ही साथ नमाज़ पढ़ रहे हैं और उनमें किसी तरह का भेदभाव नहीं है तो वह पुकार उठा कि यह है रंग और नस्ल के मसले का हल, न कि वह जो हम अमेरिका में अब तक करते रहे हैं। आज खुद ग़ैर-मुस्लिम विचारक भी जो अंधे भेदभाव और तास्सुब में ग्रस्त नहीं हैं, यह मानते हैं कि इस मसले को जिस कामयाबी के साथ इस्लाम ने हल किया, कोई दूसरा मज़हब और तरीक़ा हल नहीं कर सका है। इसलिए इस्लाम के दर्शन में समस्त मानव का एक स्वरूप दिखता है। इस्लाम-दर्शन सर्वश्रेष्ठ दर्शन है। और इस्लाम धर्म, मानव-धर्म है।

इस्लामिक दर्शन में इस्लाम के उस उसूल की चर्चा भी आवश्यक है जिसमें यह कहा गया है कि भलाई के कामों में हर एक से सहयोग और बुराई में किसी से सहयोग नहीं। इस्लाम ने एक सबसे बड़ा अहम उसूल यह पेश किया है कि "नेकी और परहेज़गारी में सहयोग करो। बुराई और गुनाह के मामले में सहयोग न करो।" (क़ुरआन, सूरा-5 माइदा, आयत-2) इसका अर्थ यह है कि जो आदमी भलाई और खुदातरसी का काम करे, यह देखे

बग़ैर कि वह उत्तर का रहनेवाला है या दक्षिण का, वह यह हक़ रखता है कि हम उससे सहयोग करेंगे। इसके विपरीत जो आदमी ज़्यादती का काम करना चाहे वह हमारा क़रीबी, पड़ोसी या रिश्तेदार ही क्यों न हो, उसका न यह हक़ है कि नस्ल व वतन या भाषा और क़ौमियत के नाम पर वह हमारा सहयोग माँगे, न उसे हमसे यह उम्मीद रखनी चाहिए कि हम उससे सहयोग करेंगे। न हमारे लिए यह जाइज़ है कि ऐसे किसी काम में उसके साथ सहयोग करें। बदकार चाहे हमारा भाई ही क्यों न हो, हमारा और उसका कोई साथ नहीं है।

नेकी का काम करनेवाला चाहे हमसे कोई रिश्ता न रखता हो, हम उसके साथी और मददगार हैं, या कम-से-कम ख़ैरख़ाह और शुभचिन्तक तो ज़रूर ही हैं। इस्लाम में यह एक ऐसा उसूल है जो अन्य धर्मों की अपेक्षा इनसानियत की रक्षा के भाव को ज़्यादा उजागर करता है। हर इनसान की आज़ादी के हक़ पर इस्लाम में काफ़ी बल दिया गया है। इस्लाम में किसी आज़ाद इनसान को पकड़कर ग़ुलाम बनाना या उसे बेच देना बिलकुल हराम क़रार दिया गया है। अल्लाह के रसूल (सल्ल०) के साफ़ शब्द ये हैं कि तीन क़िस्म के लोग हैं जिनके ख़िलाफ़ क़ियामत के दिन मैं ख़ुद दावा दायर करूँगा। उनमें से एक आदमी वह है जो किसी आज़ाद इनसान को पकड़कर बेचे और उसकी क़ीमत खाए। रसूल (सल्ल०) के इस फ़रमान के शब्द भी आम हैं, उसको किसी क़ौम या नस्ल या देश व वतन के इनसान के साथ ख़ास नहीं किया गया है। पाश्चात्य लोगों को बड़ा गर्व है कि उन्होंने ग़ुलामी का ख़ात्मा किया है। हालाँकि उन्हें यह क़दम उठाने का अवसर पिछली सदी के बीच मिला है। उससे पहले जिस बड़े पैमाने पर वे अफ़्रीक़ा से आज़ाद इनसानों को पकड़-पकड़कर अपनी नव-आबादियों में ले जाते रहे हैं और उनके साथ जानवरों से भी बुरा सुलूक करते रहे हैं, इसका ज़िक्र उनकी अपनी ही लिखी हुई किताबों में मौजूद है।

हर माँगनेवाले और तंगदस्त का यह हक़ है कि उसकी मदद की जाए। क़ुरआन में यह हुक्म दिया गया है कि "मुसलमानों के मालों में माँगनेवाले और महरूम रह जानेवाले का हक़ है।" (क़ुरआन, सूरा-51 ज़ारियात,

आयत-19) पहली बात तो यह है कि इस हुक्म में जो शब्द आए हैं वे सबके लिए हैं, उसमें मदद करने को किसी धर्म विशेष के साथ ख़ास नहीं किया गया है और दूसरे यह कि ये हुक्म मक्का में दिया गया था। जहाँ मुस्लिम समाज का कोई बाक़ायदा वजूद ही नहीं था और आमतौर पर मुसलमानों का वास्ता ग़ैर-मुस्लिम आबादी से ही होता था। इसलिए क़ुरआन की उक्त आयत का साफ़ मतलब यह है कि मुसलमान के माल पर हर मदद माँगनेवाले और हर तंगदस्त और महरूम रह जानेवाले इनसान का हक़ है। यह हरगिज़ नहीं देखा जाएगा कि वह अपनी क़ौम या अपने देश का है या किसी दूसरी क़ौम या नस्ल से उसका सम्बन्ध है। आप हैसियत और सकत रखते हों और कोई ज़रूरतमन्द आपसे मदद माँगे या आपको मालूम हो जाए कि वह ज़रूरतमन्द है तो आप ज़रूर उसकी मदद करें। ख़ुदा ने आप पर उसका हक़ क़ायम कर दिया है।

इस्लामी युद्ध-नियम व संधि की हैसियत

इस्लाम में इनसान के इनसान होने की हैसियत से जिस अधिकार का बयान किया गया है, उसको दुहराने की ज़रूरत अब नहीं है। इन बातों को ज़ेहन में रखते हुए देखना यह है कि इनसान के दुश्मन के क्या हुक़ूक़ इस्लाम में मुक़र्रर किए गए हैं।

- युद्ध-भूमि में जो लड़नेवाले नहीं हैं, उनको क़त्ल न किया जाए।
- किसी बूढ़े, किसी बच्चे और किसी औरत को क़त्ल न किया जाए।
- ख़ानक़ाह में बैठे राहिबों को क़त्ल न किया जाए।
- इबादतगाहों में बैठे हुए लोगों को न मारा जाए।

जंग में एक मौक़े पर हुज़ूर (सल्ल॰) ने एक औरत की लाश देखी तो फ़रमाया, "यह तो नहीं लड़ रही थी।" इस्लामी क़ानूनदानों को यह उसूल मालूम होना चाहिए कि जो लोग लड़नेवाले न हों उनको क़त्ल न किया जाए।

अब यह देखना है कि युद्ध के मैदान में लड़नेवालों को क्या अधिकार इस्लाम ने दिए हैं।

(क) आग का अज़ाब न दिया जाए : हदीस में नबी (सल्ल॰) का इरशाद है कि "आग का अज़ाब देना आग के रब के सिवा किसी को ज़ेबा (शोभा) नहीं देता।" इससे यह हुक्म मिला कि दुश्मन को ज़िन्दा न जलाया जाए।

(ख) ज़ख़्मी पर हमला न किया जाए। "किसी ज़ख़्मी पर हमला न करो।" मुराद है वह ज़ख़्मी जो लड़ने के क़ाबिल न रहा हो, न अमली तौर पर लड़ रहा हो।

(घ) क़ैदी को क़त्ल न किया जाए। "किसी क़ैदी को क़त्ल न किया जाए।"

(ड़) बाँधकर क़त्ल न किया जाए। "नबी (सल्ल॰) ने बाँधकर क़त्ल करने या क़ैद की हालत में क़त्ल करने से मना फ़रमाया है।" हज़रत अबू-अय्यूब अंसारी (रज़ि॰) जिन्होंने यह रिवायत नबी (सल्ल॰) से नक़ल की है, फ़रमाते हैं कि "जिस ख़ुदा के हाथ में मेरी जान है, उनकी क़सम खाकर कहता हूँ कि मैं किसी मुर्ग़ को भी बाँधकर ज़िब्ह न करूँगा।"

(च) दुश्मन क़ौम के देश में आम ग़ारतगरी या लूटमार न की जाए। यह हिदायत भी की गई कि दुश्मनों के मुल्क में दाख़िल हो तो आम तबाही न फैलाओ। बस्तियों को वीरान न करो, सिवाय उन लोगों के जो तुम से लड़ते हैं किसी और आदमी के माल पर हाथ न डालो। हदीस में बयान किया गया है कि नबी (सल्ल॰) ने लूटमार से मना किया है और आप (सल्ल॰) का फ़रमान था कि "लूट का माल मुरदार से ज़्यादा हलाल नहीं है।" यानी वह भी मुरदार की तरह हराम है। हज़रत अबू-बक्र सिद्दीक़ (रज़ि॰) फ़ौजों को रवाना करते वक़्त हिदायत फ़रमाते थे कि "बस्तियों को वीरान न करना। खेतों और बाग़ों को बरबाद न करना, जानवरों को हलाक न करना।" (ग़नीमत के माल का मामला इससे अलग है। इससे मुराद वह माल है, जो दुश्मनों के लश्करों, उसके फ़ौजी कैम्पों और उसकी छावनियों में मिले। उसको ज़रूर इस्लामी फ़ौजें अपने क़ब्ज़े में ले लेंगी। लेकिन आम लूटमार वह नहीं कर सकतीं।)

(छ) जीते हुए इलाक़े के लोगों से कोई चीज़ मुफ़्त या बिना इजाज़त

न ली जाए।

इस्लाम में इस बात से भी मना कर दिया गया है कि आम आबादी के आदमी की किसी चीज़ से मुआवज़ा अदा किए बग़ैर फ़ायदा न उठाया जाए। जंग के दौरान अगर दुश्मन के किसी इलाक़े पर क़ब्ज़ा करके मुसलमानों की फ़ौज वहाँ ठहरी हो तो उनको यह हक़ नहीं पहुँचता कि लोगों की चीज़ों का बेरोक-टोक इस्तेमाल करे।

(ज) दुश्मन की लाशों पर गुस्सा न निकाला जाए। इस्लाम में पूरे तौर पर इस बात से मना किया गया है कि दुश्मन की लाशों का अनादर किया जाए या उनकी गत बिगाड़ी जाए। हदीस में आया है कि नबी (सल्ल०) ने दुश्मनों की लाशों की काट-पीट या गत बिगाड़ने से मना फ़रमाया है। यह हुक्म जिस मौक़े पर दिया गया है वह भी बड़ा सबक़-आमोज़ है। उहुद की जंग में जो मुसलमान शहीद हुए थे, दुश्मनों ने उनकी नाक काटकर उनके हार बनाए और गले में पहने।

नबी (सल्ल०) के चाचा हज़रत हमज़ा (रज़ि०) का पेट चीरकर उनका कलेजा निकाला गया। उस वक़्त मुसलमानों का गुस्सा हद को पहुँच गया था। मगर नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया कि तुम दुश्मन क़ौम की लाशों के साथ ऐसा सुलूक न करना। हमें एक-दूसरे के साथ भाईचारे का प्रेम-व्यवहार करना चाहिए। इस्लाम धर्म के भी यही बुनियादी सिद्धान्त हैं। हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) ने भी इस संसार के सारे लोगों को इसी प्रकार भाईचारे का अमर सन्देश दिया है।

इस्लाम वादा-ख़िलाफ़ी को सख़्ती से मना करता है

इस्लाम में बदअहदी को बड़ी सख़्ती से मना किया गया है। अल्लाह के रसूल (सल्ल०) फ़ौजों को भेजते वक़्त जो हिदायतें देते थे, उनमें से एक यह थी कि बदअहदी न करना, क़ुरआन और हदीस में इस हुक्म को बार-बार दोहराया गया है कि दुश्मन अगर 'अहद' व 'पैमान' की ख़िलाफ़वर्ज़ी करता है तो करे, लेकिन तुमको अपने अहद व पैमाने की ख़िलाफ़वर्ज़ी कभी न करना चाहिए। हुदैबिया की सुलह की मशहूर घटना है कि सुलहनामा तय

हो जाने के बाद एक मुसलमान नौजवान अबू-जंदल (रज़ि॰) जिनका बाप सुलहनामे की शर्तें अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) से तय कर रहा था, बेड़ियों में जकड़े हुए आए और उन्होंने कहा, "मुसलमानो, मुझे बचाओ!"

अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने उनसे फ़रमाया, "मुआहिदा (समझौता) हो चुका है। अब हम तुम्हारी मदद नहीं कर सकते, तुम वापस जाओ। अल्लाह तुम्हारे लिए कोई रास्ता खोलेगा।" उनकी दयनीय दशा को देखकर मुसलमानों की पूरी फ़ौज रो पड़ी, लेकिन अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने जब फ़रमा दिया कि अहद को हम तोड़ नहीं सकते, तो उनको बचाने के लिए एक भी आगे न बढ़ा और हक़ के इनकारी उनको जबरन घसीटते हुए ले गए। यह अहद व पैमान की पाबन्दी की अनोखी मिसाल है और इस्लामी इतिहास में ऐसी मिसालें बहुत-सी मौजूद हैं।

जान-माल की रक्षा

अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने अपने आख़िरी हज के मौक़े पर जो तक़रीर की थी, उसमें फ़रमाया था कि तुम्हारी जानें और तुम्हारे माल एक-दूसरे पर क़ियामत तक के लिए हराम हैं। "जो आदमी किसी मोमिन को जान-बूझकर क़त्ल करे, उसकी सज़ा जहन्नम है, जिसमें वह हमेशा रहेगा, अल्लाह ने उस पर लानत फ़रमायी है, और उसके लिए सख़्त अज़ाब तैयार कर रखा है।" (क़ुरआन, सूरा-4 निसा, आयत-93) नबी (सल्ल॰) ने ज़िम्मियों के बारे में भी फ़रमाया, "जिसने किसी मुआहिद (यानी ज़िम्मी) को क़त्ल किया वह जन्नत की ख़ुशबू तक न सूँघ सकेगा।" क़ुरआन किसी जान के क़त्ल करने को हराम क़रार देने के बाद, इसमें सिर्फ़ एक क़त्ल की इजाज़त देता है और वह यह है कि ऐसा क़त्ल जो हक़ के साथ हो। यानी नाहक़ न हो, बल्कि कोई क़ानूनी हक़ उसका तक़ाज़ा करता हो कि आदमी को क़त्ल किया जाए और ज़ाहिर है कि हक़ और नाहक़ का फ़ैसला एक अदालत ही कर सकती है। इसके साथ ही इस्लाम में जान के साथ माल की रक्षा का हक़ भी दिया गया है। क़ुरआन तो ख़ुदा के क़ानून के सिवा किसी और तरीक़े से लोगों के माल लेने को बिलकुल हराम क़रार देता है। "और अपने माल आपस में बातिल

तरीक़े से न खाया करो।" (क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, आयत-188)

इस्लाम-दर्शन में मानव-जीवन के समग्र पक्षों की चर्चा है। मनुष्य की निजी ज़िन्दगी की रक्षा, इज़्ज़त की रक्षा, हर इनसान की आज़ादी तथा हक़ की रक्षा, औरत की आबरू की रक्षा तथा आदर, जुल्म के ख़िलाफ़ आवाज़ उठाने का अधिकार, अपनी राय को आज़ादी से प्रकट करने का अधिकार, अन्तरात्मा और आस्था की आज़ादी का अधिकार, यह अधिकार कि धर्म के नाते किसी को दुख न पहुँचाया जाए, यह अधिकार कि एक के जुर्म में दूसरा न पकड़ा जाए, हर ज़रूरतमन्द का यह अधिकार है कि उसकी मदद की जाए, क़ानून की निगाह में बराबरी का अधिकार, गुनाहों से बचने का अधिकार, हुकूमत के काम में शामिल होने का अधिकार, ज़िन्दा रहने का अधिकार तथा ख़ालिस इनसानी अधिकार। उपर्युक्त तमाम अधिकारों की चर्चा बड़े विस्तार से क़ुरआन में तथा हदीसों में की गई है। इस्लाम के सिवा किसी अन्य धर्म-दर्शन में मानव-जीवन से जुड़े समस्त पक्षों की व्याख्या इतने व्यापक रूप से नहीं मिलती है।

('इस्लाम की किरण' से)

वर्तमानकाल का नैतिक संकट और इस्लाम

■ डॉ॰ फ़ज़्लुर्रहमान फ़रीदी

मौजूदा दौर की एक मौलिक समस्या व्यक्तिगत एवं सामूहिक नैतिक संकट है। आज नैतिकता का ठोस एवं सुदृढ़ आधार मौजूद नहीं है। न नैतिक जीवन गुज़ारने की भावना पाई जाती है और न ऐसे प्रेरक मौजूद हैं जो इनसान को नैतिक मूल्यों की पैरवी पर आमादा कर सकें। साथ ही सामूहिक माहौल भी ऐसा है जो इन मूल्यों के अनुसार चलना मुश्किल बनाता है, लेकिन इनके हनन को आसान बनाता है और इसके लिए अनुकूल वातावरण उपलब्ध करता है।

समाज-निर्माण से सम्बन्ध रखनेवाली हर जिद्दो-जुहद की कामयाबी किसी-न-किसी तरह की नैतिकता पर निर्भर होती है। साम्यवादी (कम्युनिस्ट) समाज यद्यपि नैतिकता एवं धर्म को रद्द करता है, लेकिन एक विशिष्ट नैतिकता को प्रसारित करना चाहता है। इस मक़सद के लिए वह भी ज़ोर-ज़बरदस्ती से काम लेता है और कभी सामाजिक संस्थाओं एवं संगठनों का इच्छानुकूल गठन करता है, ताकि उसके द्वारा निर्मित नैतिकता की बुनियादें मज़बूत हो जाएँ।

पूँजीवादी व्यवस्था के बारे में विभिन्न विद्वानों ने एक विशिष्ट प्रकार के मूल्यों को पूँजीवाद के विकास का ज़िम्मेदार बताया है। जैसे वित्तीय नीति, टैक्स नीति और सम्पत्ति के सीमांकन की नीति। आप कितनी ही अच्छी योजनाएँ बना लीजिए, मगर वे सफल नहीं हो सकतीं, जब तक कि उसके पीछे अपेक्षित नैतिक मूल्य विद्यमान न हों।

यह समस्या उस वक़्त और भी पेचीदा हो जाती है जबकि पूरे समाज का कल्याण अपेक्षित हो, जैसे अगर आर्थिक प्रगति के साथ-साथ यह भी अपेक्षित हो कि इस प्रगति के लाभ जन-साधारण तक पहुँचें। आर्थिक प्रगति किसी विशेष वर्ग तक सीमित न रह जाए, बल्कि आम इनसानों तक इसकी

पहुँच हो और आर्थिक न्याय का प्रचलन हो। इस उद्देश्य के लिए विभिन्न नीतियाँ अपनाई जाती हैं। (देखिए Religion and the Rise of Capitalism) मगर ये न्याय हासिल करने में एक सीमित दूरी तक ही जा सकती हैं। इनकी कामयाबी व नाकामी अर्थ-तंत्र को चलानेवाले हाथों की ईमानदारी पर निर्भर है। इनके ज़िम्मेदारी के एहसास और त्याग-भाव पर निर्भर है। इन जैसे नैतिक गुणों को पल्लवित किए बग़ैर आर्थिक प्रगति की उपादेयता जन-साधारण तक नहीं पहुँच सकती। आर्थिक प्रगति एवं जीवन-स्तर की उच्चता जिन गुणों पर निर्भर होती है, उनमें सबसे महत्वपूर्ण धन-लोलुपता एवं स्वार्थ है। इनमें और उन नैतिक गुणों में जो आम इनसानियत को ज़िन्दगी की नेमतों से भर सकते हैं, विरोधाभास पाया जाता है। इसलिए इन दोनों प्रकार के गुणों के बीच सन्तुलन एवं सामंजस्य पैदा करना ज़रूरी है। मगर अफ़सोस है कि वर्तमान भारतीय समाज में धन-लोलुपता और उच्च जीवन-स्तर की तलब छाती जा रही है और इसके मुक़ाबले त्याग की भावना जैसे गुण विलुप्त होते जा रहे हैं।

औरत की मज़लूमियत

अर्थ-तंत्र के अलावा समाजी ज़िन्दगी के अन्य पहलुओं की तामीर भी नैतिक मूल्यों पर निर्भर है। मसलन आम इनसानी सम्बन्धों की बुनियाद जब तक आपसी प्रेम एवं सहयोग पर आधारित न हो तो हर उन्नति पाप बन जाती है और सुधार का हर क़दम उपद्रव का कारण बन जाता है। पारिवारिक ज़िन्दगी की बेहतरी के लिए जो क़दम भी महज़ कठोर क़ानून के रूप में उठाया जाता है, वह न्याय के बजाय स्वयं में ज़ुल्म का बहाना बन जाता है।

औरत सदियों से कमज़ोर रही है। उसे वे साधन भी उपलब्ध नहीं रहे जो पुरुषों को प्राप्त रहे हैं। इसलिए वह अपने अधिकारों की प्राप्ति के लिए सिर्फ़ हाथ-पैर मार सकती है, उन तक पहुँचना उसके लिए बहुत दुष्कर है।

स्त्री-पुरुष की समानता (Gender Equality) के तमाम दावों के बावजूद महिला आज भी कमज़ोर और मज़लूम है। उसके अधिकारों को लागू करने

का अमल उसी वक़्त परिणामजनक हो सकता है, जबकि वह नैतिक वातावरण पैदा किया जाए जो उसे पुरुषों का अधीन न समझे बल्कि प्रेम एवं परस्पर सहयोग की भावना को बढ़ावा दे।

पारिवारिक जीवन की सुरक्षा के लिए ईसाई समाज में एक अर्से तक तलाक़ को तक़रीबन नामुमकिन बना दिया गया था। मगर इससे सामाजिक सुदृढ़ता तो क्या आती, ज़ुल्म और शोषण के विभिन्न रास्ते निकाल लिए गए। पति-पत्नी के स्वाभाविक सम्बन्धों की जगह ग़लत और अनैतिक तरीक़े आम हो गए।

भारत में पति की आज़ादी पर रोक लगाने के लिए तलाक़ के बाद उम्र भर भरण-पोषण की ज़िम्मेदारी डाल दी गई। लेकिन आँकड़े बताते हैं कि तलाक़ के बाद भरण-पोषण हासिल करने के लिए कमज़ोर और असहाय औरत को अदालतों के इतने चक्कर लगाने पड़ते हैं कि अन्ततः अधिकतर औरतें मायूस हो जाती हैं।

राजनीतिक जीवन में दलित वर्गों के लिए जो क़दम उठाए गए हैं वे बहुआयामी हैं, लेकिन इसके बावजूद उनकी मज़लूमियत और दमन ख़त्म नहीं हुए हैं। उनकी औरतों के शील-भंग की घटनाएँ रोज़ाना अख़बारों में आती रहती हैं। उनकी बस्तियाँ उजाड़ी जाती हैं, उनके जान-माल तबाह किए जाते हैं। परन्तु विडम्बना यह है कि दलित लीडर उनकी पीठ पर सवार होकर उनकी बदहाली का मज़ाक़ उड़ाते हैं, अपनी दुनिया सँवारते हैं और कमज़ोरों की बदहाली को सियासी ताक़त का माध्यम बनाते हैं।

नैतिक संकट की व्यापकता

यह नैतिक पतन जीवन के प्रत्येक क्षेत्र पर हावी है। इसका बिगाड़ इतना व्यापक है, इसका अन्धेरा इतना गहरा है कि जनसाधारण के अलावा विशिष्ट जन भी परेशान हैं। सामूहिक जीवन में जिस तरह चरित्र-आचरण का फ़साद बरपा है, उसकी विवेचना की ज़रूरत नहीं। लेकिन कुछ महत्वपूर्ण नैतिक फ़साद ऐसे हैं, जिनका उल्लेख करना भावी संवाद के लिए आधार उपलब्ध कर सकता है।

हिंसा, उपद्रव की लहर

सबसे अहम फ़साद हमारे समाज में इनसानी ज़िन्दगी और मान-सम्मान का हनन तथा हिंसा और उपद्रव है। जिस किसी के पास शक्ति और साधन हैं, वह अपने मक़सद को हासिल करने के लिए हिंसा को क़ानून पर वरीयता देता है। पहले यह काम सिर्फ़ वे लोग करते थे जिनका पेशा अपराध और मादक-पदार्थ की तस्करी था। मगर अब यह रुझान शिक्षित युवकों और धनी लोगों तक फैल गया है। यहाँ तक कि नाबालिग़ लड़के और लड़कियों में हिंसा एवं अपराध की प्रवृत्ति तेज़ी से फैल रही है। नेतागण और उनके सहयोगी भी दुस्साहस से हत्याएँ करते हैं, जिनका सुबूत चुनावी हिंसा है। अपराध और हिंसा को हमारे समाज में अब इज़्ज़त मिलने लगी है। इसका एक रूप यह है कि विभिन्न राजनीतिक दल चुनावों के अवसरों पर अपराधियों और हत्यारों को न केवल टिकट देते हैं बल्कि उन्हें मंत्री पद भी दिए जाते हैं।

रिपोर्टों के अनुसार उत्तर प्रदेश के मन्त्रिमंडल में 12-13 लोग ऐसे हैं जिन पर हत्या व दंगों के बहुत-से मुक़दमे चल रहे हैं। हत्या एवं उपद्रव अब धार्मिक फ़साद के भी बहाने बन गए हैं, जैसे स्टेंस और उसके दो अबोध बच्चों की हत्या, हाल में एक ईसाई पादरी की हत्या। साम्प्रदायिक दंगों के मौक़ों पर बाबरी मस्जिद विध्वंस के बाद मुम्बई और अन्य स्थानों के फ़साद। ये घटनाएँ इनसानी ज़िन्दगी की अवमानना के ठोस सुबूत हैं।

वैवाहिक जीवन में हत्या की घटनाएँ अब आम होती जा रही हैं। इनमें से कुछ मीडिया की नज़र में आ जाने की वजह से सामने आ जाती हैं। मसलन अभी दो साल पहले एक सियासी पार्टी के युवा नेता ने अपनी पत्नी की हत्या की, और फिर उसकी लाश के टुकड़े-टुकड़े करके तन्दूर में फेंक दिए। हिंसा एवं हत्या की शिकार मज़लूम औरतें ज़्यादा हो रही हैं। कितनी ही दलित औरतें ऐसी हैं जिनकी इज़्ज़त लूटने के बाद उनकी हत्या कर दी गई।

इनसानी ज़िन्दगी की अवमानना का सबसे संगीन पहलू यह है कि अब

हत्या जैसा संगीन जुर्म अपने भौतिक एवं राजनीतिक हितों की पूर्ति का आम ज़रिआ समझ लिया गया है। मामूली और तुच्छ हितों के लिए, धन-सम्पत्ति के लिए हत्याएँ पहले भी होती थीं, मगर अब यह रुझान इतना तरक़्क़ी कर गया है कि विचारों के मतभेद भी इसी तरह हल किए जाते हैं। कुछ दिन पहले ख़बर आई थी कि दिल्ली में दो दोस्त युवक किसी मुद्दे पर बहस कर रहे थे, यहाँ तक कि एक ने दूसरे की हत्या कर दी। ट्रेनों में सीट के झगड़े और सिनेमा के टिकट लेने पर झगड़े भी कभी-कभी हत्या का कारण बन जाते हैं।

नवजात बच्चों की हत्या

इनसानी ज़िन्दगी की अवमानना का एक अत्यन्त घिनौना रूप नवजात शिशुओं की हत्या है। भारत में इस ज़माने में भी कुछ राज्यों जैसे केरल, उड़ीसा, बिहार इत्यादि में यह रिवाज है कि माएँ ख़ुद दाइयों की मदद से अपनी नवजात बच्चियों की विभिन्न निर्मम तरीक़ों से जन्म के कुछ महीने बाद इस भय से हत्या कर देती हैं कि इनकी वजह से दहेज का इन्तिज़ाम करना पड़ेगा।

टाइम्स ऑफ़ इण्डिया (22 सितम्बर 1999) में एक रिपोर्ट प्रकाशित हुई है, जिसमें बताया गया है कि राजस्थान के एक गाँव में 110 साल बाद एक लड़की की शादी हुई, इसलिए कि बाड़मेर ज़िले के इस देवार गाँव में एक लम्बे अर्से से एक लड़की के भी जन्म की रिपोर्ट नहीं मिली। इस सूरतेहाल का दुखद कारण यह है कि मासूम बच्चियाँ गला घोटकर या अफ़ीम खिलाकर मौत के घाट उतार दी जाती हैं। अख़बार आगे लिखता है कि आधुनिक तकनीक को बच्चियों की भ्रूण-हत्या करने के लिए भी बड़े पैमाने पर प्रयोग किया जाता है।

दहेज की वजह से नई दुल्हनों की हत्या की ख़बरें अख़बारों में बराबर आती रहती हैं। दुख की बात यह है कि इन घटनाओं में अधिकतर शिक्षित लोग लिप्त पाए गए हैं।

पुलिस और सेना का दमन

यह रुझान सिर्फ़ जन-साधारण में ही नहीं पाया जाता बल्कि प्रशासन के उन लोगों में भी बड़े पैमाने पर मौजूद है, जो शान्ति स्थापना के ज़िम्मेदार हैं। यातनाएँ और हिरासत की मौतें अब रोज़ की घटनाएँ बन गई हैं। मानवाधिकारों के अन्तर्राष्ट्रीय सिम्पोज़ियम की प्रबन्ध-समिति के अध्यक्ष जस्टिस वी॰एस॰ मलथैन ने अपने हाल के एक बयान में कहा है कि देश भर के तमाम पुलिस स्टेशनों में यातनाएँ देने की घटनाएँ हो रही हैं, यहाँ तक कि उन पुलिस स्टेशनों में भी जिनकी इन्चार्ज महिलाएँ हैं।

(क़ौमी आवाज़, 22 सितम्बर 1999)

मानवाधिकार संगठन 'पुलिस यूनियन फॉर सिविल लिबर्टीज़' (PUCL) की रिपोर्टों के मुताबिक़ सैनिक एवं अर्द्धसैनिक बलों ने कश्मीर में निरपराध लोगों की हत्याएँ और औरतों की बेइज़्ज़ती को अपना धंधा बना लिया है। कश्मीर की अदालतों में ऐसे सैकड़ों मुक़द्दमे दर्ज हैं जिनमें पुलिस और सेना के जवान आरोपी हैं। यह सुलूक उन लोगों के साथ हो रहा है जो इस देश के नागरिक हैं और उस क्षेत्र में हो रहा है जिसे हम देश का अटूट अंग कहते हैं। उत्तराखण्ड आन्दोलन के दौरान मुज़फ़्फ़रनगर और अन्य क्षेत्रों में पुलिसकर्मियों ने बड़े पैमाने पर महिलाओं को अपमानित किया और शान्तिप्रिय लोगों में से कितने ही लोगों को गोलियों का निशाना बनाया। कुछ महीने पहले आंध्र प्रदेश में पुलिस के उत्पीड़न से तंग आकर बहुत-से लोगों ने आत्महत्या कर ली। मुम्बई के 1993 के दंगों में मासूम लोगों के घरों को जलाया गया और कितने ही लोगों को गोलियों से भून दिया गया। बिहार की जेल में पुलिस ने 22 क़ैदियों की आँखें फोड़ दी थीं। यह सब शान्ति एवं व्यवस्था के नाम पर हो रहा है। इनका शर्मनाक पहलू यह है कि भय और आतंक फैलाने के लिए औरतों की इज़्ज़त को ख़ास निशाना बनाया जाता है। यह उस देश में हो रहा है जहाँ लोकतंत्र क़ायम है, जहाँ मानवाधिकार के विभिन्न संगठन सरगर्म हैं।

हिंसा की इस व्यापकता का एक कारण यह है कि इन अपराधों में

संलिप्त लोगों को यह यक़ीन है कि क़ानून की मशीनरी इतनी नाकारा है कि उनका कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता। क़ानून की पकड़ अगर कहीं सख़्त भी होती है तो वे रिश्वत के बलबूते पर इससे बच जाते हैं। दूसरा कारण उनका यह यक़ीन है कि मनमाने नतीजे बाहुबल से हासिल किए जा सकते हैं। इस सूरतेहाल की संगीनी का अन्दाज़ा आप इससे कीजिए कि आम नागरिक भी क़ानून से मदद लेने के बजाय बाहुबली से मदद लेना चाहते हैं, इसलिए लोग मुजरिमों और हथियार धारकों से मदद लेना चाहते हैं। दैनिक जीवन की आम सुविधाओं की प्राप्ति अब क़ानून की मदद से कठिन होती जा रही है। कुछ बड़े शहरों के बारे में यह बात मशहूर है कि छोटे दुकानदार शहर के दादा लोगों को 'टैक्स' देते हैं, ताकि वे ख़ैरियत से अपना कारोबार चला सकें।

भ्रष्टाचार का बढ़ना

इस नैतिक संकट का दूसरा रूप यह है कि जिन नैतिक बुराइयों को व्यक्तिगत जीवन में लोग बुरा समझते हैं, उन्हें सामूहिक मामलों में अपनाने में संकोच नहीं करते, बल्कि इन बुराइयों को अब ऐब ही नहीं समझा जाता। मसलन बिजली की चोरी अब शहरों में आम है। टैक्स की चोरी के लिए बेशुमार बहाने प्रचलित हो गए हैं। सरकार की विभिन्न योजनाओं के लिए जो रक़में मंज़ूर की जाती हैं उनका बड़ा भाग नौकरशाहों की जेबों में चला जाता है।

पूर्व प्रधानमंत्री दिवंगत राजीव गांधी ने अपने एक बयान में कहा था कि सरकार अगर एक रुपया मंज़ूर करती है तो एक पैसा ही जनता तक पहुँचता है। देश की सेवा के दावेदार राजनेता तो देश के धन पर अपना अधिकार समझते हैं।

जहाँ तक आम नैतिक मूल्यों का ताल्लुक़ है, उनका हाल और भी बुरा है। मामलात में धोखा और ख़ियानत, खाद्य पदार्थों में मिलावट, कम नापना और तौलना, एहसासे-ज़िम्मेदारी और कर्तव्यपालन से बचना, झूठ, फ़रेब वर्तमान भारतीय समाज में बुरी तरह प्रचलन में है। ये तमाम बुराइयाँ अपने

प्रारूप और प्रभाव के एतिबार से समाजी ज़िन्दगी में फ़साद पैदा करती हैं। इनसे अवाम और विशिष्ट जन सभी परेशान हैं।

क़ानून का इस्तेमाल किसके लिए?

इस नैतिक संकट ने ऐसा माहौल पैदा कर दिया है कि जिसमें नैतिक गुणों को अपनाना बहुत मुश्किल हो गया है। ईमानदारी अपनाना कठिन हो गया है और बेईमानी आसान व परिणामजनक। क़ानून का पालन जब सुरक्षा प्रदान नहीं करता, तो उसके उल्लंघन में ही ख़ैरियत है। शान्तिप्रिय नागरिक महत्वहीन है और बाहुबलवाला सम्माननीय। अगर आप धोखाधड़ी करने में माहिर हैं तो दौलत और सत्ता आपके पैर चूमेगीं। लेकिन अगर आप सीधे और साफ़ तरीक़ों से व्यापार करना चाहते हैं तो पूरी ज़िन्दगी अभावग्रस्त रहेंगे।

इस नैतिक बिगाड़ से प्रत्येक निष्ठावान भारतीय परेशान है। इसके प्रभावी इलाज के विभिन्न तरीक़े बताए जाते हैं, मगर सबसे ज़्यादा मशहूर दो तरीक़े हैं—एक यह कि इनसान अपनी फ़ितरत के एतिबार से लालची और स्वार्थी है। उसकी तबाहकारी से बचने के लिए क़ानून का सहारा लेना चाहिए और ऐसा समाधान अपनाना चाहिए जिसके भय से वह बिगाड़ से बचा रहे। लेकिन इस समाधान की सबसे बड़ी ख़ामी यह है कि ख़ुद क़ानून लागू करनेवाले भी इनसान ही होते हैं जिनकी सोच अगर ख़राब हो तो समाधान पूरी तरह सफल नहीं हो सकता। इसकी दूसरी ख़ामी यह है कि बहुत-से नैतिक दुर्गुणों का इलाज उसी वक़्त और उसी सूरत में मुमकिन है, जबकि दिल व दिमाग़ का सुधार किया जा सके।

धर्म की भूमिका

दूसरा प्रचलित समाधान है धर्म और धर्म की नैतिक शिक्षाएँ। लेकिन अधिकतर धर्म, आध्यात्मिक और सामूहिक व व्यक्तिगत नैतिकता को एक दूसरे से बिलकुल अलग रखते हैं। कुछ धर्म ऐसे हैं जिनमें आध्यात्मिकता एवं आत्मिक शुद्धि का एकमात्र रास्ता संन्यास है। जितने ज़्यादा आध्यात्मिक चरण आप तय करते जाएँगे, उतना ज़्यादा आप जनसाधारण और ज़िन्दगी

के मामलों से अलग होते जाएँगे। इनमें से कुछ ऐसे हैं जो नैतिकता को सीमित अर्थों में लेते हैं। जैसे ईसाइयत के निकट दया, सहिष्णुता व स्नेह ही अस्ल मूल्य हैं। सामूहिक नैतिकता का उसकी शिक्षाओं में कोई स्थान नहीं है। इसलिए वह सामूहिक जीवन के बारे में कोई निर्देश नहीं देता। अहिंसा की शिक्षा देनेवाले धर्म भी जैसे बौद्ध मत और जैन मत भी सामूहिक नैतिकता को आध्यात्मिक जीवन से पृथक रखते हैं। इसकी वजह यह है कि उनके यहाँ भी आध्यात्मिक पराकाष्ठा सांसारिक जीवन का त्याग है।

नैतिक बिगाड़-के इस सर्वांगीण संकट में आज प्रत्येक नागरिक जो परम्परागत विद्वेष तथा अज्ञान के दुराग्रह में लिप्त नहीं है, एक ऐसी वैचारिक एवं व्यावहारिक व्यवस्था की तलाश में है, जो इसका समाधान कर सके। दुनियापरस्ती और नफ़्सपरस्ती की दृढ़ मानसिकता पर क़ाबू पाने में इनसान की मदद कर सके। सत्य एवं न्याय के केवल शब्द और भ्रामक नारे ही प्रदान न करे, बल्कि इस सिलसिले में व्यापक मार्गदर्शन भी दे। वह धर्म एवं आध्यात्मिकता को विचित्र कर्मकांडों एवं विचारों का संग्रह न माने बल्कि उन्हें इनसान के व्यक्तिगत एवं सामूहिक जीवन के सुधार का माध्यम बनाए। नैतिक मूल्यों को मात्र व्यक्तिगत एवं निजी (प्राइवेट) जीवन तक सीमित न करे बल्कि उन्हें समाज निर्माण का आधर बनाए।

सही विचारधारा

इस्लाम एक ऐसी ही वैचारिक एवं व्यावहारिक व्यवस्था है। वह विशुद्ध आध्यात्मिक जीवन, यहाँ तक कि इबादतों (पूजा-पाठ) को भी नैतिकता से जोड़ती है, बल्कि ज़्यादा सही बात यह है कि इसके निकट ईश-प्रसन्नता का मार्ग भी नैतिक मूल्यों की निष्ठापूर्ण पैरवी से होकर गुज़रता है। वह चाल-चलन को मोमिन की ज़िन्दगी में केन्द्रीय हैसियत देती है। वह संसार-त्याग के बजाय सामूहिक जीवन के निर्माण और सुधार को सत्य-धर्म (इस्लाम) का उद्देश्य घोषित करती है। क़ुरआन में मुहम्मद (सल्ल॰) के सद्गुण जिस तरह बयान किए हैं, वे बहुत महत्वपूर्ण हैं।

क़ुरआन में है—

"बेशक तुम नैतिकता के उच्च स्तर पर हो।"

(क़ुरआन, सूरा-68 क़लम, आयत-4)

एक-दूसरी जगह इरशाद है–

"ऐ पैग़म्बर! यह अल्लाह की बड़ी रहमत है कि तुम उनके लिए बहुत नर्म मिज़ाज हो। अगर कहीं तुम सख़्त मिज़ाज और सँगदिल होते तो ये सब तुम्हारे आसपास से छँट जाते। अतः उन्हें क्षमा कर दो और उनके हक़ में क्षमा की दुआ करो और दीन के काम में उनसे राय-मशवरा करो। और जब अज़्म (दृढ़ संकल्प) कर लो तो अल्लाह पर भरोसा रखो। अल्लाह को वे लोग पसन्द हैं जो उसके भरोसे पर काम करते हैं।"

(क़ुरआन, सूरा-3 आले-इमरान, आयत-159)

इस आयत में सामूहिक नैतिकता को हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) की पैग़म्बराना हैसियत के साथ किस तरह जोड़ा गया है, यह विशेष ध्यान देने योग्य है। एक अन्य जगह हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) के नैतिक गुणों को इस तरह बयान किया गया है–

"तुम लोगों के पास एक रसूल आया है जो ख़ुद तुम ही में से है। तुम्हारा मुश्किल में पड़ना उसके लिए असह्य है, वह तुम्हारे कल्याण का लालसी है। वह ईमान लानेवालों के लिए करुणामय और दयाशील है।" (क़ुरआन, सूरा-9 तौबा, आयत-128)

सत्य, न्याय और सद्व्यवहार : इस्लाम का विशिष्ट गुण

सामूहिक नैतिकता को विभिन्न रूपों में धार्मिक ज़िन्दगी की पहचान और इबादत का मक़सद बताया गया है। इसे मोमिनों की विशिष्टता बताकर क़ुरआन ने यह स्पष्ट कर दिया है कि अल्लाह ने सत्य-धर्म (इस्लाम) को इसलिए अवतरित किया है, ताकि इसकी शिक्षाओं की पैरवी करके एक ओर तो इबादत का हक़ अदा किया जा सके और दूसरी ओर इनसान की व्यक्तिगत और सामूहिक ज़िन्दगी को सुधारा जा सके। बल्कि कुछ जगहों पर तो इनसानों के दरमियान सत्य और न्याय की स्थापना और सद्व्यवहार

को इस धर्म के अवतरित करने का उद्देश्य घोषित किया गया है।

अवतरण के प्रारम्भिक काल में हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) को हुक्म दिया गया कि अपने रब की शुक्रगुज़ारी (कृतज्ञता) का हक़ अदा करो।

क़ुरआन में है—

"अतः अनाथ (यतीम) पर सख़्ती न करो और साइल (माँगनेवाले) को न झिड़को।" (क़ुरआन, सूरा-93 ज़ुहा, आयतें-9,10)

पैग़म्बराना मिशन की पूर्ति के लिए जो हुक्म दिया गया है, उसमें ख़ालिस दीनदाराना ज़िन्दगी और सामूहिक नैतिकता का सामंजस्य इस तरह किया गया है कि इससे बेहतर तरीक़ा सम्भव न था।

क़ुरआन में है—

"ऐ ओढ़-लपेटकर लेटनेवाले उठो और ख़बरदार करो। अपने रब की बढ़ाई का एलान करो और अपने कपड़े साफ़ रखो। गन्दगी से दूर रहो और ज़्यादा हासिल करने के लिए एहसान न करो।" (क़ुरआन, सूरा-74 मुद्दस्सिर, आयतें-1-6)

गन्दगी से आशय यद्यपि कुफ़्र और शिर्क की गन्दगी है, लेकिन इससे सफ़ाई-सुथराई भी आशय है। एहसान जताने से भी मना किया गया है, इसलिए कि यह एक ऐब है। नैतिक पावनता और नैतिक अशुद्धता को पैग़म्बर के अस्ल मिशन से इस तरह जोड़ा गया है कि मानो वे एक-दूसरे के अटूट अंग हैं।

सत्य-धर्म का उद्देश्य न्याय की स्थापना बताया गया है। यह बताया गया है कि आध्यात्मिकता—संसार-त्याग का नाम नहीं है, बल्कि ईश-प्रसन्नता इसमें निहित है कि न्याय की स्थापना के लिए अनथक कोशिश की जाए—

"हमने रसूलों को साफ़-साफ़ निशानियों के साथ भेजा और उनके साथ किताब और मीज़ान (तुला) नाज़िल किया ताकि लोग इनसाफ़ पर क़ायम रहें।" (क़ुरआन, सूरा-57 हदीद, आयत-25)

एक सारगर्भित आयत में मात्र न्याय ही नहीं बल्कि अन्य नैतिक गुणों

का भी हुक्म दिया गया है–

"और अल्लाह न्याय एवं सदाचार का हुक्म देता है और बदी (दुष्कर्म), बेहयाई व ज़ुल्म से मना करता है। वह नसीहत करता है ताकि तुम सबक़ लो।" (क़ुरआन, सूरा-16 नह्ल, आयत-90)

एक अन्य आयत में तक़वा (ईशपरायणता) और अद्ल (न्याय) का प्रत्यक्ष रूप से रिश्ता जोड़ा गया है–

"किसी गरोह की दुश्मनी तुम्हें इतना उत्तेजित न कर दे कि इनसाफ़ से फिर जाओ। इनसाफ़ से काम लो, यह तक़वा से ज़्यादा मुनासिबत रखता है।" (क़ुरआन, सूरा-5 माइदा, आयत-8)

मोमिनों के गुण बयान करते वक़्त अल्लाह ने क़ुरआन में कई जगहों पर सामूहिक गुणों को नमाज़ और रब की बन्दगी के साथ बयान फ़रमाया है–

"वे लोग अपनी अमानतों और अहद व पैमान (वचनबद्धता) का लिहाज़ रखते हैं।" (क़ुरआन, सूरा-23 मोमिनून, आयत-8)

एक अन्य जगह यह इरशाद है–

"मोमिन तो वे हैं जिनके धन में असहाय वंचित लोगों का हक़ होता है।" (क़ुरआन, सूरा-51 ज़ारियात, आयत-19)

एक स्थान पर तफ़्सील से अल्लाह के नेक बन्दों के सद्गुण बयान किए गए हैं–

"जो ख़र्च करते हैं तो न फ़ुज़ूलख़र्ची करते हैं न कंजूसी, बल्कि उनका ख़र्च दो इन्तिहाओं के बीच इनसाफ़ पर क़ायम रहता है। जो अल्लाह के सिवा किसी और माबूद (पूज्य) को नहीं पुकारते। अल्लाह की हराम की हुई किसी जान को नाहक़ हलाक नहीं करते और न ज़िना (व्यभिचार) करते हैं। यह काम जो करेगा वह अपने गुनाहों का बदला पाएगा...और जो लोग झूठ के गवाह नहीं बनते और किसी निकृष्ट चीज़ पर से उनका गुज़र हो तो शरीफ़ आदमियों की तरह उस पर गुज़र जाते हैं।"

(क़ुरआन, सूरा-25 फ़ुरक़ान, आयतें-67-72)

सामूहिक नैतिकता को दीनदाराना ज़िन्दगी का तक़ाज़ा क़रार देने के लिए हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) के बहुत से कथन हैं। आप (सल्ल॰) ने इरशाद फ़रमाया—

> "विधवा और मुहताज के लिए दौड़-धूप करनेवाला व्यक्ति उस व्यक्ति की तरह है जो अल्लाह की राह में जिहाद करता है। रावी (उल्लेखकर्ता) कहते हैं कि मुझे यह ख़याल होता है कि आप (सल्ल॰) ने यह भी फ़रमाया था कि वह इस तरह है जो रात को नमाज़ में खड़ा रहे और ढीला न हो, और वह उस शख़्स की तरह है जो दिन के रोज़े रखे और कभी न छोड़े।" (हदीस : बुख़ारी)

इस्लाम ने इस तरह दीनदारी को सामूहिक नैतिकता से अंतरंग किया है। अतः तक़वा और ख़ुदा का ख़ौफ़, जन्नत की कामना, आख़िरत के अज़ाब से बचने की अभिलाषा—ये सब इनसान को दुनिया के मोहपाश से दूर रखती हैं। इन शिक्षाओं की ख़ूबी यह है कि ये सादा हैं, पेचीदा नहीं हैं। ये इनसानी स्वभाव की कमज़ोरियों का लिहाज़ करती हैं। उसे फ़रिश्ता नहीं बनाना चाहतीं, बल्कि उसकी यथासामर्थ्य इनकी पैरवी चाहती हैं। नैतिक बिगाड़ के इस दौर में ऐसी ही वैचारिक एवं व्यावहारिक व्यवस्था की ज़रूरत है। यह वह अमृत है जिसके स्रोत को विद्वेष एवं दुराग्रह के अन्धेरों ने छुपा रखा है।

इस्लाम की रहमत

■ हमूदा अब्दुल-आती

यद्यपि इनसान इस महान सृष्टि का एक बहुत छोटा अंश है, फिर भी अगर वह योजना बनाता है और योजना के गुणों को सराहता है, तो उसका अपना वजूद और सृष्टि का जीवन भी किसी सुनियोजित नीति पर ही आश्रित होना चाहिए। इसका अर्थ यह हुआ कि हमारे इस भौतिक वजूद के पीछे कोई योजनाकार है या कोई विलक्षण प्रतिभा है जो चीज़ों को अस्तित्व प्रदान करती और उन्हें व्यवस्थित रखती है। हमारे संसार के अनोखे आश्चर्य और हमारे जीवन के रहस्य इतने बड़े हैं कि वे अललटप घटनाओं या मात्र संयोग की पैदावार कहे ही नहीं जा सकते।

फिर तो इस संसार में कोई महान शक्ति होनी चाहिए जो कार्यरत हो और हर चीज़ को व्यवस्थित रखे। प्रकृति की सुन्दरतम वस्तुओं के लिए कोई महान कलाकार होना चाहिए, जो कला के उत्कृष्ट नमूने तैयार करता है और जीवन के ख़ास मक़सद को पूरा करता है। यह शक्ति तमाम शक्तियों में महान और यह कलाकार तमाम कलाकारों में श्रेष्ठ है। विवेकी और सूझ-बूझ से काम लेकर ईमान को सुदृढ़ बनानेवाले लोग ऐसी शक्ति और ऐसे कलाकार को अल्लाह या ईश्वर कहते हैं। वे उसे अल्लाह कहते हैं, इसलिए कि वही सृष्टि का स्रष्टा है, वही रचयिता है, वही जीवनदाता है और हर वस्तु को अस्तित्व प्रदान करनेवाला है। वह इनसान नहीं है, इसलिए कि इनसान न किसी इनसान को बना सकता है, न पैदा कर सकता है। वह पशु भी नहीं है, न ही वह पेड़-पौधा है, न ही वह किसी मूर्ति का नाम है, न ही किसी चीज़ की कोई प्रतिमा, इसलिए कि इनमें से कोई चीज़ न कुछ बना सक़ती है, न पैदा कर सकती है। वह मशीन भी नहीं है। वह न सूरज है, न चाँद, न ही कोई सितारा, इसलिए कि ये चीज़ें नियन्त्रित हो रही हैं किसी नियन्त्रण से और बनाई गई हैं किसी बनानेवाले द्वारा। वह इन सब चीज़ों से भिन्न है, इसलिए कि वह सब चीज़ों का पैदा करनेवाला और पालने-पोसने वाला है। किसी चीज़ के पैदा करनेवाले को उस चीज़ से भिन्न और महान

होना चाहिए, जिसे उसने पैदा किया है।

हम यह भी जानते हैं कि कोई भी चीज़ अपने-आप जीवन नहीं पा जाती। हमें यह भी मालूम है कि यह अद्भुत संसार अपने-आप नहीं पैदा हो गया, न ही आकस्मिक घटना के रूप में अस्तित्व में आया है। संसार में हो रहा अनवरत परिवर्तन सिद्ध करता है कि यह रचा गया है और हर चीज़ जो रची जाए, उसका रचयिता होना ही चाहिए।

संसार का पैदा करनेवाला, उसको पालने-पोसनेवाला, इनसान का रचयिता और पालनकर्ता, विश्व की गतिमान शक्ति और प्रभावी ताक़त, यह सब एक ही हस्ती है और उसी का नाम अल्लाह या ईश्वर है। वही है तमाम भेदों का भेद और सम्पूर्ण जगत् में सर्वश्रेष्ठ। पवित्र क़ुरआन ख़ुदा की सच्ची किताब में है—

> "अल्लाह ही है जिसने तुम्हारे लिए रात बनाई, ताकि तुम उससे आराम (और चैन) पाओ और दिन को प्रकाशमान बनाया। निस्सन्देह अल्लाह लोगों के लिए बड़ा अनुग्रहवाला है, परन्तु अधिकतर लोग कृतज्ञता नहीं दिखलाते। यह है अल्लाह, तुम्हारा पालनहार, हर चीज़ का पैदा करनेवाला। कोई उपास्य नहीं सिवाय उसके। फिर तुम कहाँ से बहकाए जा रहे हो? इसी तरह वे लोग बहकाए जा रहे हैं जो अल्लाह की आयतों का इनकार करते थे। अल्लाह ही है, जिसने तुम्हारे लिए धरती को ठहरने की जगह बनाई और आकाश को छत (के समान) बनाया और तुम्हारा रूप बनाया तो क्या ही अच्छे बनाए तुम्हारे रूप और अच्छी चीज़ों की तुम्हें रोज़ी दी। यह है अल्लाह, तुम्हारा पालनहार, तो क्या ही बरकतवाला है, अल्लाह सारे संसार का पालनहार।"
>
> (क़ुरआन, सूरा-40 मोमिन, आयतें-61-64)

अपनी मख़लूक़ के प्रति अल्लाह का प्रेम अपार है और मानव-कल्पना से परे है। हम उसके इस लगाव को न नाप सकते हैं, न गिन सकते हैं। उसने हमें पैदा किया, हमारी देखभाल की न सिर्फ़ पैदाइश के वक़्त, बल्कि उस के

बहुत पहले से। उसने हमें अच्छा और सुडौल जिस्म दिया और हमारे भौतिक विकास के लिए जिन चीज़ों की ज़रूरत थी, वह सब जुटाया। उसने हमारी उस समय सहायता की, जब हम स्वयं अपनी सहायता नहीं कर सकते थे। वही हमें और हमारे तमाम आश्रितों को रोज़ी भी देता है। उसने इनसान को दिमाग़ दिया है कि वह समझे, आत्मा और चेतना दी है कि अपने को नेक और बेहतर बना सके, भावनाएँ और अनुभूति दी है कि वह मेहरबान और दयालु बन सके।

उसकी कृपा से ही हम सत्य-ज्ञान प्राप्त करते हैं और सत्य-प्रकाश देखते हैं, क्योंकि वह कृपालु है। उसने हमें सुन्दर आकार दिया है और हमारे लिए सूरज और चाँद, धरती और समुद्र, ज़मीन और आसमान वनस्पति और जीव सधा रखे हैं, उसने उन तमाम चीज़ों को, जो हमारे फ़ायदे और उपयोगिता की हैं, पैदा कर रखा है। वह हमारे जीवन में काम आनेवाली और हमारी सेवा करनेवाली चीज़ों का रचयिता है। इनसान को प्रतिष्ठा, बुद्धि, आदर और सम्मान का पद दे रखा है, इसलिए कि वह तमाम रचनाओं में श्रेष्ठ है। यह अल्लाह की कृपा है कि उसने हमें आशा, शान्ति, साहस और विश्वास जैसे गुणों से विभूषित किया है, अपने दुखों और कष्टों के सहन करने और उसका इलाज ढूँढ निकालने की क्षमता दी है, ताकि हम इन पर क़ाबू पाकर अपने जीवन को सफल बना सकें। सच तो यह है कि अल्लाह की कृपा ही से दुखी व्यक्ति को राहत, रंजीदा को प्रसन्नता, बीमार को सेहत, कमज़ोर को शक्ति और ज़रूरतमन्द को सुख मिलता है। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि अल्लाह की कृपा जीवन के हर पहलू में हर समय, हर जगह अपना कार्य कर रही है। कुछ लोग इसे महसूस नहीं कर पाते, इसलिए कि वे ऐसा होना अनिवार्य समझते हैं, लेकिन यह है सत्य और हम इसे महसूस भी कर सकते हैं और अपनी बुद्धि से सोच भी सकते हैं।

वह दयालु, कृपालु अल्लाह हमें भुलाता नहीं, हमें गिराता नहीं, हमारी निष्ठापूर्ण दुआओं को नज़रन्दाज़ नहीं करता। उसी दयालु और कृपालु अल्लाह ने हमें अपना सन्मार्ग दिखाया, अपने दूतों, शिक्षकों, किताबों और ग्रन्थों को भेजा, जो सब-के-सब हमारी सहायता और रहनुमाई के लिए हैं।

अल्लाह के अन्तिम दूत हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) हैं और अति जीवन्त और पूर्ण सुरक्षित ग्रंथ क़ुरआन है। क़ुरआन और हदीस से हमें यह बात भी मालूम होती है कि अल्लाह अति क्षमाशील है। एक व्यक्ति अगर गुनाह का काम करता है या कोई ग़लत काम करता है, तो कहा जा सकता है कि वह अल्लाह के क़ानून के ख़िलाफ़ काम कर रहा है, वह उसके प्रति उद्दण्डता दिखा रहा है और अपनी प्रतिष्ठा और अपने अस्तित्व को आघात पहुँचा रहा है। लेकिन अगर वह निष्ठावान है, गुनाह के कामों पर दुखी होता है, ग़लत कामों पर अफ़सोस करता है, अल्लाह से रुजू करना चाहता है, उससे माफ़ी तलब करता है और उससे गिड़गिड़ाकर विनती करता है, तो फिर अल्लाह उसे निश्चित रूप से क्षमा कर देगा और उसकी विनम्रता को स्वीकृति देगा। यहाँ तक कि वे लोग जो एक ख़ुदा को मानने के बजाय उसके साथ शरीक ठहराते हैं, उनको भी क्षमा मिल सकती है, अगर वे अपनी ग़लती महसूस करें, अपना दृष्टिकोण बदल लें और एक अल्लाह की ओर पलट आएँ।

इस्लाम का अर्थ

इस्लाम शब्द अरबी धातु 'स-ल-म' से निकला है, जिसका अर्थ है 'शान्ति, शुद्धता, समर्पण और आज्ञाकारिता, परिभाषा में इस्लाम का अर्थ हुआ खुदा की प्रसन्नता के प्रति समर्पण और उसके क़ानून का पालन। इस्लाम के शाब्दिक और पारिभाषिक अर्थों में आपस में बड़ा गहरा और मज़बूत सम्बन्ध है। खुदा की प्रसन्नता के प्रति समर्पण तथा उसके क़ानून के पालन मात्र से ही सच्ची शान्ति और सदा की शुद्धता को प्राप्त किया जा सकता है।

कुछ लोग इस्लाम को 'मुहम्मदवाद' और इसके अनुयायियों को 'मोहम्मडन' के नाम से याद करते हैं। मुसलमान इन शब्दों के प्रयोग को नापसन्द भी करते हैं और इसका सख़्त विरोध भी करते हैं, इसलिए कि मुसलमानों के विश्वास और आस्था की दृष्टि से इन शब्दों के प्रयोग का कोई औचित्य नहीं है। न इस्लाम किसी व्यक्ति विशेष का 'वाद' है और न हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) की अपनी किसी 'विचारधारा' का नाम इस्लाम है जैसे गांधीवाद, मार्क्सवाद, हिटलरवाद आदि। इस्लाम इस प्रकार का कोई 'वाद' नहीं है कि

उसका नाम 'मुहम्मदवाद' रखा जा सके। 'मुहम्मदवाद' से एक अर्थ और निकलता है, वह यह कि मुहम्मद का अनुयायी मुहम्मद की उपासना करनेवाला हो या उनमें ऐसी आस्था रखनेवाला हो, जैसे 'ईसाई' हज़रत ईसा (अलैहि॰) की उपासना करते या उनमें ऐसी आस्था रखते हैं। इस शब्द के आधार पर यह भ्रम पैदा किया जा सकता है, हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) इस्लाम के संस्थापक हैं इसी लिए उन के नाम के साथ इस धर्म का नाम जुड़ा हुआ है।

ये तमाम बातें पूर्णतः ग़लत और भ्रामक हैं।

इस्लाम न तो और 'वादों' की तरह कोई 'वाद' है, न मुसलमान मुहम्मद की उपासना करते हैं, न ईसाइयों, यहूदियों, मार्क्सवादियों आदि की तरह उनमें आस्था रखते हैं। मुसलमान तो सिर्फ़ ख़ुदा की इबादत करते हैं। मुहम्मद (सल्ल॰) तो सिर्फ़ ईशदूत थे, जो मानवजाति को ख़ुदा का आदेश सुनाने और उस पर अमल करके दिखाने आए थे। इतिहास ग़वाह है कि उन्होंने ऐसा ही किया और जीवन के हर पहलू में आदर्श पेश किया। मुसलमान यह कभी नहीं सोचते कि इस्लाम के संस्थापक हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) थे। इस्लाम की संस्थापना तो अल्लाह स्वयं कर रहा है, इसकी संस्थापना हज़रत आदम (अलैहि॰) के युग में हुई और इस्लाम उसी समय से इनसानों का धर्म चला आ रहा है और यह जब तक मानवजाति पाई जाती है, चलता रहेगा।

इसलिए धर्म का अस्ल नाम इस्लाम ही है और जो इसे मानें, वे मुस्लिम हैं। ख़ुदा की प्रसन्नता और उसके आदेशों के पालन से किसी को यह भ्रम नहीं होना चाहिए कि इस्लाम इस तरह व्यक्तिगत स्वतंत्रता के ख़िलाफ़ है या वह भाग्यवाद के आगे हथियार डाल देता है। अगर किसी को यह भ्रम होता है तो इसका मतलब यह है कि उसने न तो इस्लाम का अर्थ समझा और न ही इस्लाम में ख़ुदा (ईश्वर) की धारणा को ही समझ सका। इस्लाम में ख़ुदा की जो धारणा है, वह यह है कि वह अति दयावान, कृपालु, प्रेममय, इनसानों का प्रबल हितैषी, अति विवेकी और अपनी रचनाओं तथा जीवों का बहुत ख़याल रखनेवाला है। इस प्रकार उसकी प्रसन्नता शुभचिन्ता और

भलाई जो भी क़ानून बनाता और जो भी आदेश देता है, वह मानवजाति के हित ही में होता है।

एक सच्चा निष्ठावान मुसलमान एक ख़ुदा को, सम्प्रभु, सर्वशक्तिमान, सर्वश्रेष्ठ और अनन्त, कृपालु, दयालु, रचयिता और पालनकर्ता स्वीकार करता है। इसे मान लेने का अर्थ है कि वह उसमें पूर्ण आस्था रखे, उसकी प्रसन्नता के प्रति आत्मसमर्पण करे और उस पर पूरा भरोसा रखे। इस तरह एक मनुष्य की गरिमा बनी रहेगी और वह अपने को किसी भय और किसी भी प्रकार की निराशा से बचाए रख सकेगा। न ही तो उसे किसी प्रकार का भ्रम होगा और न ही वह किसी प्रकार के सन्देह में पड़ेगा।

वह तमाम पैग़म्बरों को बिना किसी भेदभाव के स्वीकार करता है। हर क़ौम में सचेत करनेवाले ईशदूत (ख़ुदा के पैग़म्बर) आएं हैं। ये सभी पैग़म्बर भलाई के महान उपदेशक और सत्य के श्रेष्ठ समर्थक थे। उन्हें मानवजाति को अपना सन्देश सुनाने के लिए अल्लाह ने चुना था। वे इतिहास के हर युग में भेजे गए थे और हर क़ौम में एक या एक से अधिक आए थे। कभी तो दो या इससे भी अधिक पैग़म्बर एक ही क़ौम में और एक ही समय में भेजे गए। क़ुरआन मजीद उनमें से 25 का उल्लेख करता है और मुसलमान उन सबको बिना किसी भेदभाव के स्वीकार करते और उन सबको अल्लाह का भेजा हुआ सच्चा रसूल तस्लीम करते हैं। वे सभी हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) को छोड़कर किसी ख़ास आबादी या ख़ास क़ौम के लिए भेजे गए थे, लेकिन उनका पैग़ाम, उनका मज़हब, मूल रूप से वही था, जिसे 'इस्लाम' कहते हैं, इसलिए कि यह एक ही अल्लाह का भेजा हुआ सन्देश और बताया हुआ रास्ता था। सबका उद्देश्य भी एक ही था। ये सभी पैग़म्बर, बिना किसी अपवाद के, अल्लाह के भेजे और चुने हुए रसूल थे, उसके भक्त और दास भी थे और अल्लाह ने अपनी वह्य और ग्रन्थों द्वारा उनका मार्गदर्शन किया था।

नबियों की इस शृंखला में हज़रत मुहम्मद (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) आख़िरी पैग़म्बर थे और इस इमारत की आख़िरी ईंट थे।

यह कोई अललटप कल्पना नहीं है, न कोई अटकल-पच्चू है, इस्लाम की दूसरी धारणाओं की तरह यह एक वैज्ञानिक तथा तार्किक तथ्य भी है।

यहाँ कुछ प्रमुख पैग़म्बरों का उल्लेख करना उपयोगी होगा, जैसे हज़रत नूह (अलैहि॰), हज़रत इबराहीम (अलैहि॰), इसमाईल (अलैहि॰), मूसा (अलैहि॰), ईसा (अलैहि॰) और हज़रत मुहम्मद (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम)। अल्लाह की शान्ति इन सब पर हो। क़ुरआन के शब्दों में मुसलमानों को आदेश इस तरह दिया गया है—

> 'कह दो, हम ईमान लाए अल्लाह पर और उस चीज़ पर जो हमारी ओर उतारी गई और उस चीज़ पर जो इबराहीम, इसमाईल, इसहाक़, याक़ूब और उनकी सन्तान की ओर उतारी गई और जो मूसा और ईसा को दी गई और जो दूसरे सभी नबियों को उनके रब की ओर से मिली, हम उनमें किसी के बीच अन्तर नहीं करते और हम उसी के आज्ञाकारी हैं। (क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, आयत-136)

आज़ादी और मुक्ति की यह इस्लामी धारणा, अल्लाह के न्याय और अल्लाह के सामने हर व्यक्ति की अपनी जवाबदेही के सिद्धान्तों पर आधारित है। यही स्वाभाविक भी है। हर व्यक्ति को अपना बोझ खुद उठाना चाहिए, और अपने कर्मों का खुद ज़िम्मेदार होना चाहिए, इसलिए कि कोई दूसरा किसी दूसरे के पाप का प्रायश्चित नहीं कर सकता। इस तरह एक मुसलमान यह मानता है कि हज़रत आदम (अलैहि॰) से पहली ग़लती हुई थी, यह उनकी अपनी ज़िम्मेदारी थी कि उस ग़लती का वह प्रायश्चित करें। ये बातें कहना कि अल्लाह आदम को क्षमा करने में असमर्थ था और उसके गुनाह के प्रायश्चित के लिए किसी और को तैयार किया था यह कि आदम ने क्षमा चाहने की दुआ नहीं की या दुआ तो की, लेकिन उसे स्वीकृति नहीं मिली, बहुत ग़लत है और अल्लाह की कृपा-दया, न्याय और क्षमा करने के गुण और सामर्थ्य के बिलकुल विपरीत है। यह कल्पित विचार सामान्य बुद्धि को खुली चुनौती और अल्लाह की धारणा का घोर तिरस्कार है।

पुष्टि के लिए क़ुरआन की इन आयतों को भी पढ़िए—

"जो कोई भलाई करेगा, तो अपने लिए करेगा और जो बुराई करेगा, तो उसका वबाल भी उसी पर पड़ेगा। तुम्हारा पालनहार बन्दों पर ज़ुल्म करनेवाला नहीं।"

(क़ुरआन, सूरा-41 हा०मीम० सजदा, आयत-46)

"जो भला करेगा, अपना ही भला करेगा और जो बुरा करेगा, अपना ही बुरा करेगा। फिर जाना तो सबको अपने पालनहार रब की ओर है।" (क़ुरआन, सूरा-45 जासिया, आयत-15)

अच्छे व्यवहार की शिक्षा

■ मौलाना सय्यद जलालुद्दीन उमरी

समाज में जो भी व्यक्ति सेवा का हक़दार हो उसकी सेवा होनी चाहिए। इस्लाम ने यह भी बताया है कि सेवा और अच्छे व्यवहार के प्राथमिक अधिकारी कौन हैं। इनसान को माँ-बाप, बाल-बच्चों और निकटतम सम्बन्धियों से स्वाभाविक रूप से प्रेम होता है। वह उनसे एक विशेष हार्दिक सम्बन्ध महसूस करता है, इसी कारण उनकी सेवा को अपना नैतिक कर्तव्य समझता है, परन्तु समाज के अन्य लोगों के साथ इस प्रकार का भावनात्मक लगाव उसके अन्दर नहीं होता; अतः उनके साथ उसका व्यवहार भी भिन्न होता है। इस्लाम इनसानों के बीच सम्बन्धों के प्रकार, उनके पदों और श्रेणियों को पूरी तरह ध्यान में रखता है और उनके अधिकारों का निर्धारण भी करता है।

इसके साथ उसकी शिक्षा यह है कि इनसान मात्र उन्हीं व्यक्तियों की सेवा करने को अपना कर्तव्य न समझे जिनसे उसका ख़ून का सम्बन्ध है, बल्कि वह उन लोगों के साथ भी अच्छा व्यवहार करे जिनसे उसका कोई रिश्ता-नाता नहीं है। उसकी सेवा और सद्व्यवहार का क्षेत्र उसके घर और परिवार से आगे बढ़कर समूचे समाज तक फैल जाए। वह सम्पूर्ण मानवजाति को अपना परिवार समझकर उसकी सेवा के लिए खड़ा हो जाए। क़ुरआन की सूरा-4 'निसा' की एक आयत अति संक्षिप्त रूप में बताती है कि वे कौन लोग हैं जो सेवा और अच्छे व्यवहार के अधिकारी हैं और जिनसे ग़फ़लत और लापरवाही नहीं बरती जा सकती। वह आयत यह है—

"और अल्लाह ही की बन्दगी करो और उसके साथ किसी को साझी न ठहराओ और अच्छा व्यवहार करो माँ-बाप के साथ और नातेदारों, अनाथों, मुहताजों, नातेदार पड़ोसियों के साथ और उन पड़ोसियों के साथ जो अजनबी हों और पास के व्यक्ति के साथ और साथ के मुसाफ़िरों के साथ और उन (लौंडी-गुलामों) के साथ जो तुम्हारे अधिकार में हों। निस्सन्देह अल्लाह किसी ऐसे व्यक्ति

को पसन्द नहीं करता जो इतरानेवाला और डींग मारनेवाला हो।"

(क़ुरआन, सूरा-4 निसा, आयत-36)

इस आयत में हालाँकि समाज के उन समस्त कमज़ोर और वंचित वर्गों का उल्लेख नहीं है जिनकी सेवा करने की क़ुरआन ताकीद करता है, परन्तु इससे उसके सहानुभूतिपूर्ण तथा प्रेम से भरे हुए व्यवहार को समझने में सहायता मिलती है। यहाँ हम इस आयत की संक्षिप्त व्याख्या करेंगे, लेकिन इससे पहले यह बात स्पष्ट कर देना उचित होगा कि क़ुरआन ने 'सेवा' के लिए 'एहसान' का पारिभाषिक शब्द प्रयोग किया है।

यह बड़ा व्यापक शब्द है जो सेवा के सभी पहलुओं पर हावी है। इसमें ढाढ़स, सहानुभूति, प्रेम, आवश्यकताओं का पूरा करना तथा किसी को उसके अधिकार से अधिक देना आदि सब कुछ आ जाता है।

माँ-बाप के साथ अच्छा व्यवहार

क़ुरआन में एक अल्लाह की इबादत का आदेश देने के पश्चात इनसानों के साथ अच्छा व्यवहार अपनाने की हिदायत की गई है। इस विषय में सबसे पहले माँ-बाप का उल्लेख किया गया है—

"माँ-बाप के साथ अच्छा व्यवहार करो।"

(क़ुरआन, सूरा-4 निसा, आयत-36)

माँ-बाप की सेवा की शिक्षा दुनिया के प्रत्येक धर्म ने दी है। क़ुरआन में एक-दो नहीं, बल्कि अनेक स्थानों पर अल्लाह की इबादत के बाद माँ-बाप के साथ अच्छे व्यवहार का आदेश दिया गया है। इसमें यह संकेत है कि इनसान पर सबसे अधिक उपकार अल्लाह के हैं। उसके बाद माँ-बाप के उपकार हैं। इनसान का अस्तित्व, उसका जन्म, पालन-पोषण, देखभाल, शिक्षा-दीक्षा तथा उसके आर्थिक एवं नैतिक विकास आदि में माँ-बाप अधिक भागीदार होते हैं। यदि वे ध्यान न दें तो वह उन्नति नहीं कर सकता, बल्कि उसका अस्तित्व ही ख़तरे में पड़ सकता है। अशिक्षित-से-अशिक्षित तथा दरिद्र माँ-बाप भी सन्तान के लिए जो क़ुरबानी देते हैं, इनसानी समाज में इसका कोई दूसरा उदाहरण नहीं दिया जा सकता। उनके उपकारों में

अल्लाह के उपकारों की झलक दिखाई पड़ती है।

अल्लाह की इबादत वास्तव में उसके उपकारों के प्रति कृतज्ञता-प्रदर्शन है। माँ-बाप का स्थान चूँकि अल्लाह के बराबर नहीं है। अतः उनकी उपासना तो नहीं की जा सकती, परन्तु उनके साथ अच्छा व्यवहार करना अनिवार्य है। यही उनके उपकारों के प्रति कृतज्ञता प्रदर्शन है। क़ुरआन ने अल्लाह के प्रति कृतज्ञता प्रकट करने का भी आदेश दिया है और माँ-बाप के प्रति कृतज्ञता दिखाने की भी हिदायत की है—

> "मेरे प्रति कृतज्ञ हो और अपने माँ-बाप के प्रति भी। मेरी ही ओर पलटकर आना है।" (क़ुरआन, सूरा-31 लुक़मान, आयत-14)

वर्तमान सभ्यता ने पारिवारिक व्यवस्था को छिन्न-भिन्न करके रख दिया है। इसके साथ वे उच्चतम नैतिक मूल्य भी समाप्त होते जा रहे हैं जो इस व्यवस्था से सम्बद्ध थे, इसका बड़ा बुरा प्रभाव वृद्ध माँ-बाप पर पड़ा है। आज यत्नपूर्वक इस बात पर विचार किया जा रहा है कि साठ-सत्तर वर्ष के इन बूढ़ों का क्या किया जाए जो हमारे लिए बेकार हो चुके हैं। जब वे भविष्य के निर्माण में सहयोगी नहीं हैं तो उनका भार कब तक सहन किया जाए?

हालाँकि जिन बूढ़ों के विषय में इस प्रकार सोचा जाता है, उन्होंने वर्तमान पीढ़ी को तथा अपनी सन्तान को उस समय नदी में नहीं फेंक दिया जबकि वह उनके हाथों में विवश और लाचार थी और उनकी दया एवं कृपा के सहारे जी रही थी, बल्कि उन्होंने उसे अपने जिगर का ख़ून पिलाकर पाला-पोसा और जीवन के क्षेत्र में दौड़-धूप के योग्य बनाया। क़ुरआन ने विशेष रूप से बुढ़ापे में माँ-बाप के साथ अच्छा व्यवहार करने की ताकीद की है—

> "यदि उनमें से कोई एक या दोनों तुम्हारे सामने बुढ़ापे को पहुँच जाएँ तो तुम उन्हें 'उफ़' तक न कहो और न उन्हें झिड़को, बल्कि उनसे भली प्रकार बात करो और दयालुता और नर्मी के साथ उनके सामने झुककर रहो, और दुआ करो : ऐ रब ! जिस तरह

इन्होंने बचपन में दया और प्रेम से मेरा पालन-पोषण किया है, तू भी इन पर दया कर।"

(क़ुरआन, सूरा-17 बनी इसराईल, आयतें-23-24)

नातेदारों के साथ अच्छा व्यवहार

क़ुरआन में कहा गया है—

"और नातेदारों के साथ अच्छा व्यवहार करो।"

(क़ुरआन, सूरा-4 निसा, आयत-36)

क़ुरआन ने माँ-बाप के तुरन्त बाद नातेदारों का ज़िक्र यहाँ भी किया है और अन्य स्थानों पर भी। इसमें इस बात की ओर संकेत है कि माँ-बाप के बाद सबसे अधिक हक़ नातेदारों का है। माँ-बाप ही से नातेदारों की नातेदारी पैदा होती है। अतः आधार तो वही हैं, फिर जो व्यक्ति उनसे जितना क़रीबी सम्बन्ध रखता है उसका हक़ भी उतना ही बढ़ जाता है। नातेदारों के साथ अच्छा व्यवहार 'सिला-रहमी' (ख़ून के रिश्तों को जोड़े रखना और प्रेम करना) है। क़ुरआन ने इसकी बड़ी ताकीद की है। एक स्थान पर अल्लाह के प्रियजनों की विशेषताएँ इस प्रकार बयान की गई हैं—

"(और उनकी नीति यह होती है कि) अल्लाह ने जिन-जिन नातों को जोड़े रखने का आदेश दिया है उन्हें जोड़े रखते हैं, अपने रब से डरते हैं और इस बात से डरते हैं कि कहीं उनसे सख़्त हिसाब न लिया जाए।" (क़ुरआन, सूरा-13 रअद, आयत-21)

नातेदारों के साथ अच्छे व्यवहार से पूरा सामाजिक जीवन आनन्दमय बन जाता है। जहाँ यह ख़ूबी न हो वहाँ सामाजिकता में बिगाड़ आ जाता है। इसी कारण नातेदारों से अच्छे व्यवहार का बड़ा महत्व बताया गया है।

हज़रत सुलैमान-बिन-आमिर (रज़ि॰) अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) से रिवायत करते हैं कि आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

"किसी ऐसे मुहताज को (जिससे नाता न हो) सदक़ा (दान) देना केवल एक सदक़ा है, लेकिन वही सदक़ा किसी सम्बन्धी को दिया जाए तो यह सदक़ा भी है और सिला-रहमी (नातेदारों से

अच्छा व्यवहार) भी।" (हदीस : तिरमिज़ी, नसई)

अभिप्राय यह कि नातेदारों पर ख़र्च करना दुगुने सवाब (पुण्य) का कारण है। एक पहलू से यह एक सामान्य सदक़ा है जिस प्रकार अन्य सदक़े हैं। दूसरे पहलू से यह नातेदारों के साथ अच्छा व्यवहार भी है और सिला-रहमी भी।

यह एक वास्तविकता है कि इनसान अपने नातेदारों से स्वाभाविक रूप से निकटता महसूस करता है। इसी के साथ यह भी एक हक़ीक़त है कि कुछ रिश्तों में बड़ी कोमलता पाई जाती है। साधारण-सी घटनाओं से वैमनस्य पैदा हो जाता है और सम्बन्ध बिगड़ने लगते हैं। हदीस में कहा गया है कि इन सम्बन्धों को बिगड़ने न दिया जाए और उन्हें क़ायम रखने का हर सम्भव प्रयत्न किया जाए। अच्छा व्यवहार इसका एक बेहतर तरीक़ा है।

हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-उमर (रज़ि॰) की रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

> "नाता जोड़नेवाला (सिला-रहमी करनेवाला) वह नहीं है जो नातेदारों से उस समय नाता जोड़े जबकि वे भी उसके साथ अच्छा व्यवहार करें, बल्कि वास्तव में नाता जोड़नेवाला तो वह है जो उस समय नातों को जोड़े जबकि वे टूट जाएँ।"
>
> (हदीस : बुख़ारी, अबू-दाऊद)

हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि॰) की रिवायत है कि एक व्यक्ति ने अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) से कहा कि "मेरे कुछ नातेदार हैं। मैं तो उनसे नाता जोड़ता हूँ, परन्तु वे मुझसे नाता तोड़ते हैं, मैं उनसे अच्छा व्यवहार करता हूँ और वे मेरे साथ बुरा व्यवहार करते हैं, मैं उन्हें माफ़ करता हूँ परन्तु वे मेरे साथ घटिया व्यवहार करते हैं।" आपने यह सुनकर फ़रमाया—

> "यदि तुम्हारा व्यवहार ऐसा ही है जैसा कि तुमने बयान किया है तो मानो तुम उनके मुँह में गर्म राख भर रहे हो और जब तक तुम्हारा यह व्यवहार बना रहेगा अल्लाह की ओर से एक मददगार तुम्हारे साथ रहेगा।" (हदीस : मुस्लिम)

अनाथों (यतीमों) के साथ अच्छा व्यवहार

माँ-बाप और नातेदारों का हक़ सबसे ऊपर है। उनके साथ अच्छे व्यवहार का आदेश देने के बाद समाज के अन्य मुहताजों, ज़रूरतमन्दों और कमज़ोरों के साथ सद्व्यवहार का आदेश दिया गया है। इस विषय में सबसे पहले अनाथों और मुहताजों का ज़िक्र किया गया है जो समाज के सबसे कमज़ोर वर्ग होते हैं। क़ुरआन में है—

"और अनाथों और मुहताजों के साथ अच्छा व्यवहार करो।"
(क़ुरआन, सूरा-4 निसा, आयत-36)

जिस मासूम बच्चे के सिर से उसके बाप की छाया उठ जाए, वह उस खुलूस, प्रेम और ध्यान से वंचित हो जाता है जो उसके पालन-पोषण, शिक्षा-दीक्षा तथा प्रायः आर्थिक विकास और स्थिरता के लिए बुनियादी महत्व रखता है। इसलिए यह समाज की ज़िम्मेदारी है कि उसकी आवश्यकताएँ पूरी करे और उसे बाप से वंचित होने का एहसास न होने दे।

समाज द्वारा उपेक्षा और बेपरवाई से इतना ही नहीं कि उसका पालन-पोषण ठीक ढंग से नहीं होगा और वह शारीरिक रूप से दुर्बल होगा, बल्कि उसका उचित मानसिक एवं वैचारिक प्रशिक्षण भी नहीं हो सकेगा। आश्चर्य नहीं कि ऐसे क्रूर एवं निर्दयी समाज के विरुद्ध उसके अन्दर विद्रोह की भावना पनपने लगे और वह एक अच्छा नागरिक बनने के स्थान पर पूरे समाज के लिए हानिकारक सिद्ध हो।

क़ुरआन और हदीस में अनाथों के पालन-पोषण, देखभाल, शिक्षा-दीक्षा, उनकी सम्पत्ति की रक्षा और उनके अधिकारों की पूर्ति पर बार-बार ज़ोर दिया गया है।

हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि॰) बयान करते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

"अनाथ का भरण-पोषण करनेवाला, चाहे वह उसका हो या किसी दूसरे का (नातेदार हो अथवा अपरिचित) वह और मैं जन्नत में इस प्रकार क़रीब होंगे जैसे मेरी (शहादत और बीच की उँगली

को आपस में मिलाकर दिखाया) ये दो उँगलियाँ।" (हदीस : मुस्लिम)

हदीस के उल्लेखकर्ता इमाम मालिक ने भी तर्जनी (शहादत) और बीच की उँगली को आपस में मिलाकर दिखाया।

अनाथ अपनी कमज़ोरी और नासमझी के कारण अपने वैध अधिकारों की भी रक्षा नहीं कर पाता। उसके अधिकारों को छीनना हर एक के लिए आसान होता है। क़ुरआन ने ऐसे लोगों को कठोर दण्ड की धमकी दी है—

> "निश्चय ही वे लोग जो यतीमों का माल ज़ुल्म से खाते हैं, वे तो अपने पेट आग से भरते हैं, और वे अवश्य जहन्नम की भड़कती हुई आग में डाले जाएँगे।" (क़ुरआन, सूरा-4 निसा, आयत-10)

इस्लाम पूरे समाज पर यह ज़िम्मेदारी डालता है कि वह यतीमों के न केवल पालन-पोषण की व्यवस्था करे, बल्कि उन्हें दयावान, संयमी, सुशील और शरीफ़ इनसान बनाने में सहायता करे ताकि वे समाज पर बोझ और मुसीबत बनने के बजाय उसके लिए सम्पत्ति और साधन बन सकें।

मुहताजों के साथ अच्छा व्यवहार

अनाथों के साथ मुहताजों का भी उल्लेख किया गया है। मुहताज से मुराद समाज के वे लोग हैं जो शारीरिक असमर्थता और आर्थिक परेशानियों के कारण अपनी बुनियादी आवश्यकता पूरी करने में असमर्थ हैं। शारीरिक असमर्थता भी आर्थिक दौड़-धूप में बाधक बनती है और धन का अभाव भी। इस्लाम चाहता है कि इस बाधा को दूर किया जाए और जो लोग आर्थिक परेशानियों में घिरे हुए हों उनकी हर सम्भव सहायता की जाए, ताकि उनकी आवश्यकताएँ पूरी हों और उन्हें आर्थिक स्थिरता प्राप्त हो। क़ुरआन और हदीस में दरिद्रों और मुहताजों के साथ अच्छे व्यवहार और उनके नैतिक तथा क़ानूनी अधिकारों का बार-बार उल्लेख किया गया है। एक स्थान पर आदेश है—

> "तो नातेदार को उसका हक़ दो, और मुहताज और (ज़रूरतमन्द) मुसाफ़िर को (उसका हक़), यह उत्तम है उनके लिए जो अल्लाह की

खुशी चाहते हैं और वही कामयाब होनेवाले हैं।"

(क़ुरआन, सूरा-30 रूम, आयत-38)

मुहताज प्रायः भीख माँगनेवाले को कहा जाता है। भीख माँगना लाचारी और दरिद्रता का लक्षण नहीं है। जिन लोगों की यह बुरी आदत बन जाती है, वे बिना किसी लाचारी के भी भीख माँगते हैं। उन्हें मुहताज नहीं, मुहताजों जैसे रूपवाला कहना चाहिए। इसके विपरीत कुछ लोग अधिक ज़रूरतमन्द होते हैं, लेकिन उनका स्वाभिमान और आत्मसम्मान उन्हें इस बात की अनुमति नहीं देता कि वे किसी के सामने हाथ फैलाएँ। क़ुरआन की शिक्षा यह है कि इस प्रकार के वास्तविक ज़रूरतमन्दों को देखा जाए। विशेष रूप से उन लोगों को जो दीन (धर्म) की सेवा में लग जाने के कारण आर्थिक दौड़-धूप नहीं कर सकते। उनके विषय में क़ुरआन में है—

"उनके स्वाभिमान के कारण बेख़बर उन्हें धनवान समझता है। तुम उनके चेहरों से उनको पहचान सकते हो। वे लोगों से चिमट-चिमटकर नहीं माँगते।" (क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, आयत-273)

इस आयत की व्याख्या हज़रत अबू-हुरैरा की एक रिवायत से होती है। वे कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

"मुहताज वह नहीं है जो लोगों के सामने हाथ फैलाए माँगता फिरे, जिसे तुम दो-एक निवाले (या खाने की कोई चीज़) या एक-दो छुहारे दे देते हो, बल्कि मुहताज तो वह है जो बुनियादी आवश्यकताओं की सामग्री न होने के बावजूद इस प्रकार रहता है कि उसकी हालत का पता नहीं चलता कि उसे सदक़ा या दान दिया जाए और न ही वह खड़ा होकर किसी से माँगता है।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

इस प्रकार समाज के उन शरीफ़ और सम्मानित व्यक्तियों की सहायता की ओर ध्यान दिलाया गया है जिनकी आर्थिक परेशानियों की जानकारी बड़ी मुश्किल से ही होती है और जो सबसे अधिक सहायता के हक़दार होते हैं।

पड़ोसियों के साथ अच्छा व्यवहार

क़ुरआन की सूरा-4 निसा की आयत 36 में पड़ोसियों की सेवा और उनके साथ अच्छा व्यवहार करने की हिदायत इस प्रकार दी गई है—

> "नातेदार पड़ोसियों, अजनबी पड़ोसियों और पास बैठनेवालों के साथ अच्छा व्यवहार करो।" (क़ुरआन, सूरा-4 निसा, आयत-36)

इनसान जिन लोगों के बीच रहता है और जो उसके पड़ोसी हैं और जिनसे वह अपने सामाजिक और आर्थिक जीवन में अलग-थलग नहीं रह सकता उनके अधिकार स्पष्ट है कि उन लोगों से अधिक हैं जिनसे उसका इस प्रकार का सम्बन्ध नहीं होता। यहाँ पड़ोसियों के तीन प्रकार बताए गए हैं। एक वह जो पड़ोसी होने के साथ नातेदार भी है, दूसरा वह जो केवल पड़ोसी है और तीसरा वह जिसका संयोग से या कभी-कभी साथ हो जाता है जैसे यात्रा में, कार्यालय में, स्कूल और कॉलेज में, कारख़ाने और फ़ैक्ट्री में, व्यापार और कारोबार में। जिन लोगों के साथ इस प्रकार का साथ हो वे भी एक प्रकार के 'पड़ोसी' हैं। पड़ोसियों के साथ अच्छे व्यवहार का महत्व संसार के समस्त धर्मों ने बताया है। परन्तु इस्लाम ने पड़ोसियों के साथ सद्व्यवहार ही की शिक्षा नहीं दी, बल्कि पड़ोसी होने का इतना व्यापक विचार दिया कि संसार में इसका कोई उदाहरण नहीं मिलता। उसने कहा कि इनसान के साथ किसी भी प्रकार का थोड़ी-बहुत देर के लिए भी साथ हो जाए तो उसका हक़ क़ायम हो जाता है। यदि यह सम्पर्क स्थाई हो तो उसका हक़ भी बहुत अधिक बढ़ जाता है।

हज़रत आइशा (रज़ि॰) और हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-उमर (रज़ि॰) दोनों से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

> "जिबरील (अलैहि॰) मुझे पड़ोसी के साथ अच्छे व्यवहार की इतनी ताकीद करते थे कि मैं सोचने लगा कि वे विरासत (उत्तराधिकार) में उसे भागीदार बना देंगे।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

इस्लाम केवल इतना ही नहीं चाहता कि पड़ोसी को किसी प्रकार का कोई कष्ट न पहुँचे, बल्कि वह यह भी चाहता है कि उसकी आर्थिक, नैतिक,

हर प्रकार की सहायता की जाए और उसके साथ अत्यन्त शालीनता का व्यवहार अपनाया जाए ताकि समाज का हर व्यक्ति इस विश्वास और इत्मीनान के साथ जीवन बिताए कि वह शुभचिन्तक लोगों के बीच रह रहा है, जिनसे उसे कभी कोई कष्ट नहीं पहुँचेगा, वे किसी भी आड़े समय में उसकी सहायता के लिए दौड़ पड़ेंगे और उसके दुख-दर्द में भाइयों की भाँति काम आएँगे। इस मामले में इस्लाम की शिक्षाओं के महत्व का अनुमान निम्नलिखित दो हदीसों से हो सकता है—

अबू-सईद ख़ुदरी (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने तीन बार फ़रमाया :

"ख़ुदा की क़सम ! वह व्यक्ति मोमिन नहीं, ख़ुदा की क़सम ! वह व्यक्ति मोमिन नहीं, ख़ुदा की क़सम ! वह व्यक्ति मोमिन नहीं।" पूछा गया—'कौन?' आप (सल्ल०) ने फ़रमाया—

> "वह व्यक्ति जिसके कष्टदायक कामों से उसका पड़ोसी सुरक्षित न हो।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

इस हदीस में पड़ोसी को कष्ट पहुँचाने और दुख देने को ईमान के विरुद्ध ठहराया गया है। एक अन्य हदीस में हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-अब्बास (रज़ि०) कहते हैं कि मैंने अल्लाह के रसूल (सल्ल०) को फ़रमाते सुना—

> "वह व्यक्ति मोमिन नहीं है जो स्वयं तो पेट भरकर खाए और उसका पड़ोसी उसके निकट ही भूखा पड़ा रहे।"
>
> (हदीस : मिश्कात, बैहक़ी)

इससे पता चलता है कि ईमान की पहचान ही यह है कि आदमी का पड़ोसी उसकी वजह से शान्ति का अनुभव करे और वह उसके दुख-दर्द और कठिनाइयों में काम आए।

यात्रियों के साथ अच्छा व्यवहार

इसके बाद इब्नुस्सबील यानी यात्रियों (मुसाफ़िरों) का ज़िक्र है। अपरिचितों और यात्रियों की सेवा को सदा ही पुण्य और सवाब का काम समझा गया

है, उनके लिए सराएँ बनाई गईं और उनके खाने-पीने और आराम व राहत का प्रबन्ध किया गया। अब सेवा की भावना समाप्त हो गई है और इन चीज़ों का स्थान बड़े-बड़े भव्य होटलों ने ले लिया है। इन होटलों से न तो हर व्यक्ति के लिए फ़ायदा उठाना आसान है और न ही यात्रियों के सारे मसले हल होते हैं। जो व्यक्ति वतन से दूर और यात्रा की स्थिति में हो उसे अनेक कठिनाइयाँ पेश आ सकती हैं। रुपये-पैसे का न होना, स्वास्थ्य का बिगड़ जाना, निवास एवं भोजन की उचित सुविधा का न होना, कारोबार तथा अन्य आवश्यकताओं के लिए भाग-दौड़ में कष्टों का सामना करना आदि एक सामान्य-सी बात है। यदि यात्रा विदेश की हो तो व्यक्ति अन्तर्राष्ट्रीय नियमों के तहत कुछ अन्य प्रकार की परेशानियों में घिर सकता है।

इस पहलू से देखा जाए तो आज के युग में यात्रा की समस्याएँ पहले से अधिक विस्तृत और जटिल हो गई हैं। इस्लाम पूरे समाज की यह ज़िम्मेदारी ठहराता है कि वह ऐसे तमाम अवसरों पर यात्री के साथ अच्छे-से-अच्छा व्यवहार करे, ताकि वह अपने को अपरिचित महसूस न करे और जिस उद्देश्य के लिए उसने अपना घर-बार और वतन छोड़ा था वह यात्रा के कष्टों के कारण पूरा होने से न रह जाए।

गुलामों और आश्रितों के साथ अच्छा व्यवहार

जो लोग सेवा और अच्छे व्यवहार के अधिकारी हैं उनमें गुलामों और अधीन लोगों को विशेष रूप से शामिल किया गया है। अल्लाह का आदेश है—

> "और अपने गुलामों के साथ अच्छा व्यवहार करो।"
>
> (क़ुरआन, सूरा-4 निसा, आयत-36)

क़ुरआन अवतरित होने के शताब्दियों पहले से गुलामी की प्रथा थी। गुलामों के साथ पशुओं से भी बुरा व्यवहार किया जाता था और उनके कोई अधिकार नहीं थे। क़ुरआन गुलामी को समाप्त करना चाहता है, इस विषय में उसने जो प्रयास किए हैं यहाँ उन पर वार्ता करने का अवसर नहीं है,

केवल इतना कहना है कि उसने इस बारे में प्रथम प्रयास यह किया कि गुलामों, आश्रितों और अधीनों के अधिकार निश्चित किए और उनके साथ अच्छे व्यवहार की ताकीद की। इस विषय से सम्बन्धित बहुत-सी हदीसों में से यहाँ केवल एक हदीस प्रस्तुत की जा रही है।

हज़रत अबू-ज़र (रज़ि०) की रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया—

> "ये गुलाम तुम्हारे भाई हैं, जो ख़ुद खाओ वही इनको खिलाओ और जो ख़ुद पहनो वही इनको पहनाओ। इनकी शक्ति व सामर्थ्य से अधिक इनसे काम न लो। यदि इन पर शक्ति से अधिक बोझ डालो तो उसके उठाने में इनकी सहायता करो।"
>
> (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

गुलामों और आश्रितों के प्रति अच्छे व्यवहार का आदेश देने के बाद अन्त में आदेश दिया—

> "निस्सन्देह अल्लाह किसी ऐसे व्यक्ति को पसन्द नहीं करता जो घमण्डी है और डींगें मारता है।"
>
> (क़ुरआन, सूरा-4 निसा, आयत-36)

इस आयत में 'मग़रूर' और 'शेख़ी' दो शब्द आए हैं। यद्यपि ये दोनों शब्द समानार्थी हैं, परन्तु फिर भी इनमें थोड़ा-सा अन्तर है। 'मुख़ताल' वह व्यक्ति है जिसके कामों से घमण्ड का प्रदर्शन हो। 'फ़ख़ूर' उस व्यक्ति को कहा जाता है जो शेख़ी बघारता और अपनी बड़ाई बयान करता फिरे और डींग मारे। तात्पर्य यह कि अल्लाह उस व्यक्ति को बहुत नापसन्द करता है जिसकी कथनी और करनी से घमण्ड और अभिमान प्रकट होता हो। घमण्ड इनसान को अल्लाह की इबादत और बन्दों की सेवा, दोनों ही से रोकता है। जबकि इन दोनों विशेषताओं के कारण ही इनसान की इनसानियत बाक़ी रहती है, वरना वह पशु से भी नीचा हो सकता है।

नैतिक शिक्षा के साथ क़ानूनी सुरक्षा भी

एक बात नोट करने की यह है कि यहाँ माँ-बाप, नातेदारों, दरिद्रों,

मुहताजों और समाज के अन्य कमज़ोर व्यक्तियों तथा वर्गों के साथ अच्छे-से-अच्छा और उत्तम-से-उत्तम व्यवहार करने की शिक्षा दी गई है। यह शिक्षा मक्का से मदीना तक क़ुरआन उतरने की पूरी अवधि में निरन्तर जारी रही। इस प्रकार समाज में एक-दूसरे के साथ सहानुभूति और प्रेम की भावना निरन्तर पैदा की गई और कमज़ोरों, उपेक्षितों और हक़दारों के अधिकार पहचानने और उनके साथ अच्छा व्यवहार करने की लगातार प्रेरणा दी जाती रही, फिर एक विशेष चरण में इस्लाम ने इन सबके अधिकार निर्धारित किए और क़ानूनी सुरक्षा प्रदान की, ताकि कोई व्यक्ति किसी कमज़ोर पर अत्याचार न कर सके और कोई हक़दार अपने अधिकार पाने से वंचित न रहे।

मज़दूरों के अधिकार

हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) ने फ़रमाया कि इनसान की वह रोज़ी सबसे ज़्यादा पवित्र (पाकीज़ा) है जो उसने अपने हाथ से मेहनत करके कमाई है। हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

> "उससे बेहतर कोई खाना नहीं जो आदमी अपने हाथ से कमा कर खाता है। हज़रत दाऊद (अलैहि॰) अपने हाथों से रोज़ी कमाते थे।"

हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

> "इस संसार में जितने भी सन्देष्टा आए हैं सब ने बकरियाँ चराई हैं। सहाबा-ए-किराम ने पूछा—ऐ अल्लाह के रसूल (सल्ल॰)! आपने भी! फ़रमाया—हां; मैं भी कुछ कीरात (मुद्रा का नाम) के बदले मक्का के वासियों की बकरियाँ चराया करता था।"
>
> (हदीस : बुख़ारी)

इस्लाम की इन तालीमात का अर्थ यह है कि जो भी व्यक्ति मेहनत करके रोज़ी कमाता है और मेहनत करके अपना घर-बार चलाता है वह समाज का एक सम्माननीय व्यंक्ति है, कोई भी मज़दूरी करनेवाला इस्लाम की नज़र में सम्माननीय है, अर्थात् उसे इज़्ज़त की निगाह से देखता है।

ब्याज से त्राण

■ प्रो॰ डॉ॰ मुहम्मद ज़ियाउर्रहमान आज़मी

ब्याज एक सामाजिक रोग है, जो कैंसर के रोग की तरह फैलता है। यह रोग जिस समाज में फैल जाता है, उसके जीवित रहने की क्षमता घटती चली जाती है। इसी लिए प्राचीनकाल में कुछ जातियाँ अपने शत्रुओं के लिए इसका प्रयोग करती थीं, जबकि स्वयं अपने ऊपर इसे वर्जित किए हुए थीं। बाइबल में भी इसको अपने लोगों के लिए वर्जित किया गया है।

"यदि तू मेरी प्रजा में से किसी ग़रीब को, जो तेरे पास रहता हो, रुपए का ऋण दे तो उससे महाजन के समान ब्याज न लेना।"

(निर्गमन, 22:25)

"जो अपना रुपया ब्याज पर नहीं देता है और भोले-भाले निर्दोष लोगों को हानि पहुँचाने के लिए घूस नहीं लेता। जो कोई ऐसी चाल चलता है, वह कभी न डगमगाएगा।"

(भजन संहिता, 15:5)

नहेम्याह ने यहूदियों को फटकारा जो अपने भाइयों से ब्याज लेते थे। (नहेम्याह, 5: 6-12) जहाँ बाइबल ने यहूदियों को आपस में ब्याज के लेने से रोका है, वहीं ग़ैर-यहूदियों से ब्याज लेना उचित और वैध बताया है।

"अपने किसी भाई को ब्याज पर ऋण न देना, चाहे रुपया हो, चाहे भोजन-वस्तु हो, चाहे कोई वस्तु हो जो ब्याज पर दी जाती है, उसे ब्याज पर न देना। तू परदेसी को ब्याज पर ऋण तो दे, परन्तु अपने किसी भाई से ऐसा न करना।" (व्यवस्थाविवरण, 23:19-20)

सत्य तो यह है कि यहूदियों को भी ब्याज खाने से रोका गया था। परन्तु उन्होंने ऐसा न किया बल्कि ब्याज खाते रहे। पहले ग़ैर-यहूदियों से ब्याज खाया और जब आपस में भी खाने लगे जिसके कारण अल्लाह ने बहुत सारी हलाल चीज़ें भी उन पर हराम कर दीं। (देखें क़ुरआन, 4:160-161)

रहा इस्लाम तो उसने ब्याज का खाना सदैव के लिए वर्जित कर दिया, चाहे वह मुसलमान के बीच हो, चाहे मुसलमान और ग़ैर-मुस्लिम के बीच; क्योंकि इस्लाम एक ऐसे समाज की स्थापना करना चाहता है जिसमें आपस में सहानुभूति तथा सहायता का बरताव किया जाए, जबकि ब्याज का प्रचार समाज में घृणा और शत्रुता का कारण बनता है। ब्याज देनेवाला व्यक्ति ब्याज लेनेवाले लोगों की विवशता से लाभ उठाता है और उनकी दुर्दशा को अपनी कमाई का साधन बनाता है, बल्कि एक बार निर्धन को ब्याज देकर उसको सदैव के लिए अपना अधीन बना लेता है; क्योंकि ब्याज एक ऐसी व्यवस्था है जिसके चंगुल में एक बार कोई निर्धन फंस जाए तो फिर वह कभी नहीं निकल सकता। भला ऐसे समाज में सहानुभूति तथा प्रेम-भाव कैसे पैदा हो सकता है! इसलिए क़ुरआन ने ब्याज लेने की कड़ी निन्दा की है—

> "जो लोग ब्याज खाते हैं वे इस प्रकार उठेंगे जैसे वह आदमी उठता है जिसको शैतान ने छूकर बावला कर दिया हो। यह इसलिए होगा कि उन्होंने कहा : व्यापार भी तो ब्याज के समान है जबकि अल्लाह ने व्यापार को हलाल किया और ब्याज को हराम।"
>
> (क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, आयत-275)

अर्थात् ब्याज खानेवाले क़ियामत में बावलों की तरह उठेंगे और यथार्थ बात तो यही है कि दुनिया ही में हराम की इस कमाई में वे किसी बावले से कम नहीं होते, जो हर समय निर्धनों का रक्त चूसने के लिए सोचते रहते हैं। इसलिए क़ुरआन मोमिनों से साफ़ तौर से कहता है—

> "ऐ ईमानवालो, अल्लाह से डरो, और जो ब्याज शेष रह गया है उसे छोड़ दो, यदि तुम सचमुच ईमानवाले हो। अगर तुमने ऐसा न किया तो अल्लाह और उसके रसूल से जंग के लिए तैयार हो जाओ, और यदि क्षमा माँग लो तो अपना मूलधन लेने का तुम्हें अधिकार है, ताकि न तुम किसी पर अत्याचार करो, और न तुम पर अत्याचार किया जाए।"
>
> (क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, आयतें-278, 279)

अर्थात् ऋण देनेवाले के लिए जाइज़ है कि जितना ऋण दिया है वह

वापस ले ले, और उस पर ब्याज लेने से तौबा कर ले। अगर ऐसा कर लेता है तो न उस पर अत्याचार होगा और न ऋण लेनेवाले पर। परन्तु अगर वह ऐसा नहीं करता है बल्कि ब्याज लेने पर अड़ा रहता है तो फिर वह अल्लाह और उसके रसूल (सल्ल॰) से युद्ध करता है और अल्लाह तथा रसूल (सल्ल॰) से युद्ध करनेवाला संसार तथा परलोक में कभी सफल नहीं हो सकता। संसार में वह ऐसे बावले की तरह जीवन व्यतीत करेगा, जिसको शैतान ने छू लिया हो और यह भी हो सकता है कि कोई ऐसी आपदा आ जाए जिससे उसका सारा धन जाता रहे, जैसा कि ब्याज खानेवालों का अंजाम देखा गया है। प्रलय में उनके साथ जो होनेवाला है वह इसके अतिरिक्त है।

इसके विपरीत सदक़ा (दान) है, जिसके विषय में क़ुरआन में आया है—

> "अल्लाह ब्याज को घटाता और मिटाता है, और सदक़ों (दान) को बढ़ाता है।" (क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, आयत-276)

क़ुरआन की दृष्टि में ब्याज प्रत्येक दशा में हानिकारक है। इसके द्वारा किसी भलाई की आशा नहीं की जा सकती, जिसका समर्थन अब पश्चिम के अर्थशास्त्री भी करने लगे हैं, और उनकी बहुत बड़ी संख्या इस्लामी अर्थव्यवस्था का अध्ययन करने की ओर आकर्षित हो गई है।

क़ुरआन में एक दूसरे स्थान पर आया है—

> "जो ब्याज तुम देते हो, ताकि लोगों के धनों में सम्मिलित होकर बढ़ जाए तो वह अल्लाह के यहाँ नहीं बढ़ता और जो ज़कात तुम अल्लाह की प्रसन्नता प्राप्त करने के लिए देते हो तो ऐसे ही लोग हैं अपना माल बढ़ानेवाले।" (सूरा-30 रूम, आयत-39)

ब्याज से माल बढ़ता नहीं बल्कि जिस धन में ब्याज मिल जाए उससे उसकी बरकत उठ जाती है। इसके विपरीत ज़कात के देने से धन में कमी नहीं आती, बल्कि अल्लाह की ओर से बरकत होती है और ज़कात देनेवाले का धन बढ़ता ही रहता है। यह तो संसार की बात है और परलोक में उसके बदले क्या कुछ मिलनेवाला है हम उसको सोच भी नहीं सकते।

ब्याज दो प्रकार के होते हैं—

1. प्रथम जिसे रिबा नसीया या चक्रवृद्धि ब्याज कहते हैं, जैसे एक हज़ार रुपये ऋण देकर एक माह बाद एक हज़ार एक सौ रुपए लिए जाएँ। मौजूदा समय में अधिकतर ब्याज रिबा नसीया है, क्योंकि इस ब्याज में समय का बहुत महत्व होता है अर्थात् जितना अधिक समय बीतेगा उसी हिसाब से ब्याज बढ़ता जाएगा। कभी ब्याज के ऊपर भी ब्याज लग जाता है, जिसकी ओर क़ुरआन संकेत करते हुए कहता है—

"ऐ ईमानवालो ! बढ़ा-चढ़ाकर ब्याज न खाओ और अल्लाह से डरो, ताकि तुम्हें सफलता प्राप्त हो।"

(क़ुरआन, सूरा-3 आले-इमरान, आयत-130)

ब्याज के लेने-देने में होता यह है कि ऋण लेनेवाला अगर समय पर ऋण वापस नहीं कर पाता है तो साहूकार उसे कुछ और समय दे देता है, परन्तु इसके बदले ब्याज की दर बढ़ा देता है, फिर जितना समय बीतता जाता है ब्याज की दर बढ़ती जाती है, यहाँ तक कि छोटा-सा मूलधन बढ़कर कहीं-से-कहीं पहुँच जाता है, जिसको वापस करना असम्भव हो जाता है। फिर उसका घर-बार सब कुछ बिक जाता है और वह फ़क़ीर होकर रह जाता है। उसके पास न रहने के लिए घर होता है, न खाने के लिए भोजन, न पहनने के लिए वस्त्र, क्योंकि यह सब साहूकार का हो जाता है। इस दशा को क़ुरआन ने 'अज़आफ़म मुज़ा-अफ़ह' कहा है जिसका अर्थ बढ़ा-चढ़ाकर लेना है, क्योंकि रिबा नसीया में सबसे अधिक महत्व समय का है जिसके कारण ब्याज बढ़ते-बढ़ते कहीं-से-कहीं पहुँच जाता है। ऐसे साहूकारों को चेतावनी दी गई है कि अल्लाह से डरो। उसके बाद की आयत में बताया गया है—

"उस आग से डरो जो नाफ़रमानों के लिए तैयार की गई है।"

(क़ुरआन, सूरा-3 आले-इमरान, आयत-131)

अर्थात् ऐ ईमानवालो, अगर तुम ब्याज से नहीं रुकते तो तुम्हारा यह बुरा कर्म तुमको कुफ़्र तक पहुँचा सकता है, क्योंकि ऐसा करना वास्तव में अल्लाह तथा रसूल (सल्ल॰) से युद्ध करने के समान है। निष्कर्ष यह कि रिबा नसीया में समय की प्रधानता एवं महत्ता होती है और समय के हिसाब से ब्याज बढ़ता है। इसलिए किसी ऋण से यदि समय तथा ब्याज की दर

निकाल दी जाए तो वह केवल ऋण रह जाएगा और ऋण को वापस करते समय अगर लेनेवाले ने अपनी ओर से स्वयं कुछ बढ़ाकर दे दिया तो वह ब्याज नहीं होगा, बल्कि ऐसे व्यक्ति की तो प्रशंसा की गई है ।

2. द्वितीय प्रकार के ब्याज को 'रिबल-फ़ज़्ल' कहते हैं इसका अर्थ है किसी वस्तु को बदलने की दशा में अधिक देना। हदीस में आया है–

> "सोने को सोने के बदले बेचो और चाँदी को चाँदी के बदले और गेहूँ को गेहूँ के बदले और जौ को जौ के बदले और खजूर को खजूर के बदले और नमक को नमक के बदले और जो एक दूसरे के बराबर हों और हाथ-के-हाथ हों। ये चीज़ें अगर बदलकर बेचनी हों तो जैसे चाहो वैसे बेचो, परन्तु हाथ-के-हाथ होनी चाहिए।"
>
> (हदीस : मुस्लिम-1587)

अर्थात् उधार नहीं।

इसी प्रकार की और भी बहुत-सी सहीह हदीसें हैं जिनसे निम्नलिखित बातों का ज्ञान होता है।

1. ये चीज़ें तीन प्रकार की हैं–(i) सोना, चाँदी। (ii) अनाज। (iii) मसाला।

ये तीन प्रकार की वे चीज़ें हैं जिनसे मनुष्य की मुख्य आवश्यकताएँ पूरी हो जाती हैं। इस्लाम ने इनको बेचने के लिए इस बात को ध्यान में रखा कि कहीं इनमें भी ब्याज का कोई पहलू पैदा न होने पाए, इसलिए इनको बेचने के लिए दो शर्तें लगाईं। एक यह कि इनको बराबर की दशा में बेचा जाए, अर्थात् एक किलोग्राम अनाज या नमक को एक ही किलोग्राम अनाज या नमक से बेचा जाए। इसमें अच्छे और ख़राब सब बराबर हैं। यह प्रतिबन्ध इसलिए लगाया कि कहीं किसी निर्धन को ब्याज के दलदल में न फँसना पड़ जाए ।

दूसरी शर्त यह लगाई गई कि हाथ-के-हाथ हो, अर्थात् उधार न हो जैसे कोई एक किलोग्राम सोने के बदले बेचना चाहे परन्तु उधार पर, तो यह सही नहीं होगा बल्कि ब्याज बन जाएगा; क्योंकि पहले बताया जा चुका है कि

समय ब्याज का विशेष कारण है। इसलिए आवश्यक है कि ये चीज़ें बराबरी के साथ हाथ-के-हाथ बेची जाएँ।

2. जब इनको बदलकर बेचना हो तो जैसे चाहें बेच सकते हैं, शर्त यह है कि हाथ-के-हाथ बेची जाएँ। जैसे सोने को चाँदी के बदले या गेहूँ को जौ के बदले बेचना हो तो बराबर का होना ज़रूरी नहीं। जिस प्रकार और जितने में चाहें बेच सकते हैं, परन्तु हाथ-के-हाथ उसी समय होना ज़रूरी है।

3. जब इन चीज़ों के बदले किसी और चीज़ को बेचना हो तो फिर कोई शर्त नहीं, जैसे चाहे बेचा जाए। हाथ-के-हाथ का होना भी आवश्यक नहीं। जैसे एक ग्राम सोने के बदले सौ किलोग्राम गेहूँ। इसी प्रकार सौ किलोग्राम खजूर के बदले पाँच सौ किलोग्राम अनाज। अब एक व्यक्ति सौ किलोग्राम उत्तम चावल को उससे कम अच्छे चावल के बदले बेचना चाहता है ताकि अधिक मिल जाए तो उसको चाहिए कि पहले सौ किलोग्राम उत्तम चावल को रुपयों में बेच दे, और फिर उस रुपये से कम अच्छा चावल जितना मिलता हो ख़रीद ले। ऐसी दशा में उस पर कोई प्रतिबन्ध नहीं है। यह है इस्लाम की आर्थिक व्यवस्था, जिसके द्वारा वह निर्धन के अधिकार की रक्षा करता है, ताकि वह ब्याज के रोग में जकड़कर सदैव के लिए नष्ट न हो जाए।

अब चूँकि व्यापार में लेन-देन नोटों के द्वारा होता है, इसलिए एक हज़ार के बदले एक हज़ार एक सौ रुपए ले या दे तो यह ब्याज कहलाएगा, चाहे हाथ-के-हाथ हों या क़र्ज़ की दशा में, चाहे बैंक के द्वारा हों या व्यक्ति द्वारा। इसलिए बैंक के ब्याज से बचने के लिए विद्वानों ने इस्लामिक बैंक का विचार पेश किया। जो शरीअत के विभिन्न आधारों पर निर्धारित है विशेषकर 'मुज़ारबत' और 'सलम'। मुज़ारबत यह है कि कुछ लोग मिलकर पूँजी इकट्ठा करते हैं और कुछ लोग उससे व्यापार करते हैं और सभी लोग लाभ और हानि में किसी सिद्धान्त के द्वारा सम्मिलित होते हैं।

'सलम' का प्रयोग व्यापार में किया जाता है जो बैंक से क़र्ज़ लेकर 'सलम' के सिद्धान्त पर वापस किया जाता है। अधिक जानकारी के लिए किसी इस्लामी बैंककारी की पुस्तक का अध्ययन किया जा सकता है।

अहिंसा और इस्लाम

■ डॉ० मुहम्मद अहमद

वामन शिवराम आप्टे ने 'संस्कृत-हिन्दी-कोश' में 'अहिंसा' का अर्थ इस प्रकार किया है—अनिष्टकारिता का अभाव, किसी प्राणी को न मारना, मन-वचन-कर्म से किसी को पीड़ा न देना (पृष्ठ 134)। मनुस्मृति (10/63, 5/44, 6/75) और भागवत पुराण (10/5) में यही अर्थापन किया गया है। 'अहिंसा परमो धर्मः' का वाक्य इसी से सम्बन्धित है। प्रसिद्ध जैन विद्वान श्री वल्लभ सूरी ने अपनी पुस्तक 'जैनिज़्म' (Jainism) में 'अहिंसा' की व्याख्या इन शब्दों में की है—

"जैन-धर्म के सन्तों ने अहिंसा को सदाचार के एक सिद्धान्त के रूप में ज़ोर देकर प्रतिपादित किया है। 'अहिंसा' की संक्षिप्त परिभाषा यह है कि जीवन सम्माननीय है चाहे वह किसी भी रूप में मौजूद हो। अतः किसी भी जीव को हानि न पहुँचाओ और इसे सदाचरण का श्रेष्ठतम नियम बन जाने दो। सज्जन पुरुष वह है जो हिंसा की ओर तनिक भी प्रवृत्त न हो। प्रत्येक धर्म मानव-जीवन के सम्मान को स्वीकार करता है। जैन-धर्म इन्हीं अनुभूतियों और भावनाओं को जीवन के दूसरे रूपों तक विस्तृत करना चाहता है...पर एक व्यक्ति कह सकता है कि जीवन के सभी रूपों को हानि पहुँचाने से पूर्णतः बचते हुए संसार में जीवित रहना लगभग असम्भव है, इसलिए जैन धर्म विभिन्न प्रकार की हिंसाओं में हिंसा करनेवाले की मानसिक प्रवृत्ति के अनुसार अन्तर करता है...यह बात मानी हुई है कि प्रतिदिन के कार्य, चलने-फिरने, खाना पकाने और कपड़े धोने एवं इस प्रकार के दूसरे कार्यों से बहुत कुछ हिंसा होती है। कृषि और उद्योग-धन्धे के विभिन्न कार्य भी हिंसा का कारण बनते हैं। इसी प्रकार स्वयं की अथवा धन-सम्पत्ति की प्रतिरक्षा के सिलसिले में भी हमलावर से जीवन को हानि पहुँच सकती है या वह नष्ट हो सकता है। अतः जैन-धर्म इस सामान्य और समग्र सैद्धान्तिकता के बावजूद, जो इसके सभी सिद्धान्तों की एक विशेषता है, एक गृहस्थ की हिंसा के इन तीन प्रकार को करने से नहीं रोकता है, जिन्हें सांयोगिक,

व्यावसायिक और प्रतिरक्षात्मक कह सकते हैं। गृहस्थ को ऐसी हिंसा से बचने का परामर्श दिया गया है जो हिंसा के लिए हो, जो मात्र रस, प्रसन्नता और मनोविहार के रूप में हो या कोई उद्देश्य प्राप्त करना अभीष्ट हो।"

(पृष्ठ 8-10)

इस्लाम व्यावहारिक मानव-जीवन के प्रत्येक अंग के लिए एक प्रणाली है। यह वह प्रणाली है जो आस्था-सम्बन्धी उस कल्पना को भी अपने में समाहित किए हुए है, जो जगत् की प्रकृति की व्याख्या करती और जगत् में मानव का स्थान निश्चित करती है। जिस प्रकार वह मानव-अस्तित्व के मौलिक उद्देश्य को निश्चित करने का कार्य करती है। इसमें सिद्धान्त और व्यावहारिक व्यवस्थाएँ भी शामिल हैं, जो इस आस्थात्मक कल्पना से निकलती एवं इसी पर निर्भर करती हैं और इसे वह व्यावहारिक रूप प्रदान करती मानव-जीवन में चित्रित होता है।

'इस्लाम' अरबी भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है–

"शान्ति में प्रवेश करना। यह सन्धि, कुशलता, आत्मसमर्पण, आज्ञापालन और विनम्रता के सन्दर्भ में भी प्रस्तुत होता है। इस्लाम अर्थात् वह धर्म जिसके द्वारा मनुष्य शान्ति-प्राप्ति के लिए अल्लाह की शरण लेता है और क़ुरआन एवं हदीस (हज़रत मुहम्मद सल्ल॰ के वचन एवं कर्म) द्वारा निर्दिष्ट सिद्धान्तों के आधार पर अन्य मनुष्यों के प्रति प्रेम और अहिंसा का व्यवहार करता है।" (शॉरटर इन्साइक्लोपीडिया ऑफ़ इस्लाम, पृष्ठ-176)

इस्लाम मनुष्य को शान्ति और सहिष्णुता का मार्ग दिखाता है। यह सत्य, अहिंसा और कुशलता का समर्थक है। इसका सन्देश वास्तव में शान्ति का सन्देश है। इसका लक्ष्य शान्ति, सुधार और निर्माण है। वह न तो उपद्रव और बिगाड़ को पसन्द करता है और न ही ज़ुल्म-ज़्यादती, क्रूरता, अन्याय, अनाचार, अत्याचार, असहिष्णुता, पक्षपात और संकीर्णता आदि विकारों तथा बुराइयों का समर्थक है। ईशदूत हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) ने कहा कि जो व्यक्ति भी इस्लाम में आया, सलामत रहा।

इतिहास में झाँकें तो यह तथ्य स्पष्टतया सामने आता है कि हज़रत

मुहम्मद (सल्ल॰) से पूर्व अरबवासी सभ्यता और मानवोचित आचार-व्यवहार से कोसों दूर थे, इसी लिए उस युग को 'ज़माना-ए-जाहिलियत' (अज्ञानकाल) कहा जाता है (द्रष्टव्य-लिटररी हिस्ट्री ऑफ़ अरब्स-आर॰ए॰ निकल्सन, कैम्ब्रिज यूनीवर्सिटी, पृष्ठ 25)। उस युग में चारों ओर अज्ञान, अनाचार, अशान्ति, अमानवीय कृत्यों और वर्गगत विषमताओं का साम्राज्य था। अरबों में अधिकतर बद्दू थे, जो प्रायः असभ्य होने के साथ-साथ अत्यन्त पाषाणहृदय भी थे। इनके बारे में क़ुरआन में कहा गया है—

"ये बद्दू इनकार और कपटाचार में बहुत ही बढ़े हुए हैं।"
(क़ुरआन, सूरा-9 तौबा, आयत-97)

इस्लाम ने उन सभ्य आचार-विचार से रहित बद्दुओं को सन्मार्ग दिखाया और उन्हें पशुत्व से ऊपर उठाकर मानवता के श्रेष्ठ मूल्यों से परिचित कराया, बल्कि उन्हें दूसरों के पथ-प्रदर्शक एवं अल्लाह के धर्म का आवाहक बना दिया। हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) ने लोगों को सदाचार और नैतिकता की शिक्षा दी। उन्हें प्रशिक्षित कर आत्मशुद्धि का मार्ग दिखाया और समाज को तथ्यहीन रीति-रिवाजों से मुक्त कर उच्च कोटि के नैतिक व्यवहार, संस्कृति, सामाजिकता और अर्थ के नए नियमों पर व्यवस्थित कर सुसंगठित किया। क़ुरआन में हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) के बारे में अल्लाह ने कहा है—"हमने तुम्हें सारे संसार के लिए बस सर्वथा दयालुता बनाकर भेजा है।" (क़ुरआन, सूरा-21 अंबिया, आयत-107)। स्पष्ट है, जो सारे संसार के लिए दयालुता का सागर हो, उसकी शिक्षा हिंसात्मक कदापि नहीं हो सकती। हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) ने कहा है—"अल्लाह ने मुझे नैतिक विशेषताओं और अच्छे कार्यों की पूर्ति के लिए भेजा है।" (शरहुस्सुन्नह)। क़ुरआन में है—

"निस्सन्देह तुम (ऐ मुहम्मद) एक महान नैतिकता के शिखर पर हो।" (क़ुरआन, सूरा-68 क़लम, आयत-4)

इस्लाम के विरोधी लोग और ऐसे कुछ लोग भी जो इस्लाम की शिक्षाओं से अनभिज्ञ हैं, यह दुष्प्रचार करते हैं कि यह हिंसा और आतंकवाद का

समर्थक है। ये शब्द इस्लामी शिक्षाओं के विपरीतार्थक शब्द हैं, जिनका इस्लाम से दूर-दूर का भी कोई सम्बन्ध नहीं है। यदि कहीं कुछ मुसलमान अपने व्यक्तिगत हित के लिए हिंसा और आतंकवाद का मार्ग अपनाएँ और इन्हें बढ़ावा दें, तो भी किसी प्रकार इनका सम्बन्ध इस्लाम से नहीं जुड़ सकता, बल्कि यह धर्म-विरुद्ध कार्य होगा और इसे धर्म के बदतरीन शोषण की संज्ञा दी जाएगी। इस्लाम दया, करुणा, अहिंसा, क्षमा और परोपकार का धर्म है। इसके कुछ सुदृढ़ प्रमाणों पर यहाँ चर्चा की जाएगी।

क़ुरआन का आरम्भ 'बिसमिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम' से होता है। क़ुरआन की सभी सूरतों (अध्यायों) का प्रारम्भ इन्हीं शब्दों से होता है और इन्हीं शब्दों के साथ मुसलमान अपना प्रत्येक कार्य प्रारम्भ करते हैं। इनका हिन्दी अनुवाद इस प्रकार है—'अल्लाह के नाम से जो अत्यन्त करुणामय और दयावान है।' ('याल्लाह नाम जापं योल्लाहो दयी हितैष्यपि'—संस्कृत अनुवाद)। इस वाक्य में अल्लाह की दो सबसे बड़ी विशेषताओं का उल्लेख किया गया है। वह अत्यन्त करुणामय है और वह अत्यन्त दयावान है। उसके बन्दों और भक्तों में भी ये उत्कृष्ट विशेषताएँ अभीष्ट हैं। उसके बन्दों की प्रत्येक गतिविधि उसकी कृपा और अनुग्रह की प्राप्ति के लिए होती है। क़ुरआन में है—

> "अल्लाह का रंग ग्रहण करो; उसके रंग से अच्छा और किसका रंग हो सकता है?" (क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, आयत-138)

अल्लाह की कृपाशीलता और उसकी दयालुता का बखान अल्लाह का बन्दा प्रत्येक नमाज़ में बार-बार करता है और अपनी परायणता एवं विनयशीलता की अभिव्यक्ति बार-बार करता है। यह उसकी सहिष्णुता का द्योतक भी है। पवित्र क़ुरआन के प्रथम अध्याय का पाठ अल्लाह का बन्दा प्रत्येक नमाज़ में अनिवार्यतः करता है, क्योंकि यह नमाज़ का महत्वपूर्ण भाग है, जिसके अभाव में नमाज़ का आयोजन पूर्ण नहीं हो सकता। यहाँ इस अध्याय का हिन्दी अनुवाद किया ज़ा रहा है, ताकि सन्दर्भित विषय भली-भाँति स्पष्ट हो सके—

"प्रशंसा अल्लाह ही के लिए है जो सारे संसार का प्रभु है, बड़ा कृपाशील और दया करनेवाला है, बदला दिए जाने के दिन का मालिक है। हम तेरी ही बन्दगी करते हैं और तुझ ही से मदद माँगते हैं। हमें सीधा मार्ग दिखा, उन लोगों का मार्ग, जो तेरे कृपापात्र हुए, जो प्रकोप के भागी नहीं हुए, जो भटके हुए नहीं हैं।"

(क़ुरआन, सूरा-1 फ़ातिहा, आयतें-1-7)

इस्लाम की शान्ति, सहिष्णुता, सद्भावना की शिक्षाएँ समझने के लिए पवित्र क़ुरआन की कुछ आयतों के अनुवाद यहाँ प्रस्तुत हैं–

"जब कभी उनसे कहा गया कि धरती पर फ़साद (अशान्ति, बिगाड़) न पैदा करो, तो उन्होंने यही कहा कि 'हम तो सुधार करनेवाले हैं।' सावधान, वास्तव में यही लोग फ़साद पैदा करते हैं, किन्तु ये जान नहीं पा रहे हैं।"

(क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, आयतें-11,12)

"अल्लाह का दिया हुआ खाओ-पियो और धरती में बिगाड़ न फैलाते फिरो।" (क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, आयत-60)

"जब उसे सत्ता मिल जाती है तो धरती में उसकी सारी दौड़-धूप इसलिए होती है कि अशान्ति फैलाए, खेतों को नष्ट और मानव-संतति को तबाह करे—हालाँकि अल्लाह बिगाड़ कदापि नहीं चाहता—और जब उससे कहते हैं कि अल्लाह से डर, तो अपनी प्रतिष्ठा का ध्यान उसको गुनाह पर जमा देता है। ऐसे व्यक्ति के लिए तो बस नरक ही पर्याप्त है और वह बहुत बुरा ठिकाना है।"

(क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, आयतें-205,206)

"वे लोग जो ख़ुशहाली और तंगी की प्रत्येक अवस्था में ख़र्च करते रहते हैं और क्रोध को रोकते हैं और लोगों को क्षमा करते हैं—और अल्लाह को भी ऐसे लोग प्रिय हैं, जो अच्छे-से-अच्छा कर्म करते हैं।" (क़ुरआन, सूरा-3 आले-इमरान, आयत-134)

"ऐ लोगो जो ईमान लाए हो, आपस में एक-दूसरे के माल ग़लत तरीक़े से न खाओ, लेन-देन होना चाहिए आपस की

रज़ामन्दी से और अपने को क़त्ल न करो (अर्थात्, आत्महत्या) तथा अन्य लोगों की हत्या न करो।"

(क़ुरआन, सूरा-4 निसा, आयत-29)

"अपने प्रभु को गिड़गिड़ाकर और चुपके-चुपके पुकारो। निश्चय ही वह हद से आगे बढ़नेवालों को पसन्द नहीं करता और धरती में उसके सुधार के पश्चात् बिगाड़ न पैदा करो। भय और आशा के साथ उसे पुकारो। निश्चय ही, अल्लाह की दयालुता सत्कर्मी लोगों के निकट है।" (क़ुरआन, सूरा-7 आराफ़, आयतें-55,56)

"नर्मी और क्षमा से काम लो, भले काम का हुक्म दो और अज्ञानी लोगों से न उलझो।" (क़ुरआन, सूरा-7 आराफ़, आयत-199)

"और वे क्रोध को रोकनेवाले हैं और लोगों को क्षमा करनेवाले हैं और अल्लाह को ऐसे लोग प्रिय हैं जो अच्छे से अच्छा कर्म करते हैं।" (क़ुरआन, सूरा-3 आले-इमरान, आयत-134)

"निश्चय ही अल्लाह न्याय का और भलाई का एवं नातेदारों को (उनके हक़) देने का आदेश देता है और अश्लीलता, बुराई एवं सरकशी से रोकता है। वह तुम्हें नसीहत करता है, ताकि तुम ध्यान दो।" (क़ुरआन, सूरा-16 नहल, आयत-90)

क़ुरआन की इन आयतों से इस्लाम की शान्ति, कुशलता और सदाचरण की शिक्षाएँ स्पष्ट तथा परिलक्षित होती हैं और लोगों को सफल जीवन के लिए आमंत्रित करती हैं। वास्तव में शान्ति, प्रेम, अहिंसा और सदाचरण इस्लाम की महत्वपूर्ण शिक्षाएँ हैं, लेकिन इस्लाम अहिंसा को इस अर्थ में नहीं लेता कि मानव-उपभोग की वे चीज़ें बहिष्कृत कर दी जाएँ, जिनमें जीव-तत्व हो। इस आधार पर ही कोई व्यक्ति फल, सब्ज़ियाँ, दही और अनाज आदि का सेवन नहीं कर सकता, क्योंकि विज्ञान ने इनमें जीव-तत्व सिद्ध कर दिया है और न ही कोई व्यक्ति इस आधार पर एंटी बायोटिक औषधि का सेवन कर सकेगा, क्योंकि इससे जीवाणु मर जाएँगे। इस्लाम की शिक्षाएँ मानव-जीवन के लिए पूर्णतः व्यावहारिक हैं। इस्लाम को यह भी अभीष्ट है कि जहाँ

सत्य-असत्य के बीच संघर्ष हो, वहाँ सत्य का साथ दिया जाए और उसके लिए जी-तोड़ प्रयत्न किया जाए। यह अहिंसा के विरुद्ध नहीं है। इस्लाम ने असत्य के विरुद्ध युद्ध का आदेश तो दिया है, लेकिन विभिन्न प्रकार के प्रतिबन्धों के साथ ताकि आदेश कहीं 'हिंसा' की परिभाषा में न आ जाए। इस सम्बन्ध में क़ुरआन की कुछ आयतें दृष्टव्य हैं—

"जिसने किसी व्यक्ति को किसी के ख़ून का बदला लेने या धरती में फ़साद (हिंसा और उपद्रव) फैलाने के अतिरिक्त किसी और कारण से मार डाला तो मानो उसने सारे ही इनसानों की हत्या कर डाली। और जिसने उसे जीवन प्रदान किया, उसने मानो सारे इनसानों को जीवन-दान दिया।" (क़ुरआन, सूरा-5 माइदा, आयत-32)

"और अल्लाह के मार्ग में उन लोगों से युद्ध करो जो तुमसे युद्ध करें, किन्तु ज़्यादती न करो। निस्सन्देह, अल्लाह ज़्यादती करनेवालों को पसन्द नहीं करता।" (क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, आयत-190)

इस्लाम ने युद्ध के दौरान वृद्धजनों, स्त्रियों, बच्चों और उन लोगों पर जो इबादतगाहों में शरण लिए हों चाहे वे किसी भी धर्म के अनुयायी हो, हाथ उठाने से मना किया है और अकारण फलदार व हरे-भरे वृक्षों को काटने से रोका है।

"किसी जीव की हत्या न करो जिसे (मारना) अल्लाह ने हराम ठहराया है, यह और बात है कि हक़ (न्याय) का तक़ाज़ा यही हो।"
(क़ुरआन, सूरा-17 बनी-इसराईल, आयत-33)

"तुम्हें क्या हुआ है कि अल्लाह के मार्ग में और उन कमज़ोर पुरुषों, औरतों और बच्चों के लिए युद्ध न करो, जो प्रार्थनाएँ करते हैं कि हमारे रब! तू हमें इस बस्ती से निकाल, जिसके लोग अत्याचारी हैं और हमारे लिए अपनी ओर से तू कोई समर्थक नियुक्त कर और हमारे लिए अपनी ओर से तू कोई सहायक नियुक्त कर।" (क़ुरआन, सूरा-4 निसा, आयत-75)

"इनसाफ़ की निगरानी करनेवाले बनो और ऐसा न हो कि

किसी गरोह की शत्रुता तुम्हें इस बात पर उभार दे कि तुम इनसाफ़ करना छोड़ दो।" (क़ुरआन, सूरा-5 माइदा, आयत-8)

यदि किसी के व्यवहार से किसी के दिल को पीड़ा पहुँचती है, तो यह भी हिंसा है। आइए, हम हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) के कुछ पवित्र वचनों का अध्ययन करते हैं, जिनसे लोगों के साथ अच्छे व्यवहार, शील-स्वभाव और सदाचरण की शिक्षा मिलती है।

हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि॰) से रिवायत (उल्लिखित व वर्णित) है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने कहा—

"किसी सिद्दीक़ (अत्यन्त सत्यवान व्यक्ति) के लिए उचित नहीं कि वह लानत करे।" (हदीस : मुस्लिम)

एक अन्य हदीस में है—

"लानत करनेवाले क़ियामत (प्रलय) के दिन न तो सिफ़ारिश कर सकेंगे और न गवाही देनेवाले होंगे।" (हदीस : मुस्लिम)

हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि॰) से रिवायत है कि नबी (सल्ल॰) ने कहा—

"आदमी के झूठा होने के लिए यही पर्याप्त है कि वह जो बात सुने उसको बयान करता फिरे।" (हदीस : मुस्लिम)

हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि॰) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने कहा—

"मोमिनों में ईमान की दृष्टि से सबसे पूर्ण वह व्यक्ति है, जो उनमें शील-स्वभाव की दृष्टि से सबसे अच्छा हो और तुममें अच्छे वे हैं जो अपनी स्त्रियों के प्रति अच्छे हों।" (हदीस : तिरमिज़ी)

एक अन्य हदीस में है—

"पड़ोसियों में सबसे अच्छा पड़ोसी अल्लाह की दृष्टि में वह है जो अपने पड़ोसियों के लिए अच्छा हो।"

एक दूसरी हदीस में है—

"सारी मख़लूक़ (संसार के लोग) अल्लाह का परिवार है। तो

अल्लाह को सबसे अधिक प्रिय वह है, जो उसके परिवार के साथ अच्छा व्यवहार करे।"

हज़रत आइशा (रज़ि॰) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने कहा—

"निस्सन्देह अल्लाह नर्म है। वह हर एक मामले में नर्मी को पसन्द करता है।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) ने इनसानों के प्रति उदारता, क्षमाशीलता और दयालुता का व्यवहार किया और इनकी शिक्षा दी। साथ ही, पशु-पक्षियों पर भी दया करने की शिक्षा दी। आप (सल्ल॰) सारे जीवधारियों के लिए रहमत बनाकर भेजे गए थे। पशु-पक्षी भी इससे अलग न थे। आप अत्यन्त बहादुर थे और अत्यन्त नर्मदिल भी। आपने जानवरों के साथ नर्मी करने, उनको खिलाने-पिलाने का हुक्म दिया और सताने से रोका। इस्लाम के आगमन से पूर्व अरबवासी निशानेबाज़ी का शौक़ इस तरह किया करते थे कि किसी जानवर को बाँध देते और उस पर निशाना लगाते। आप (सल्ल॰) ने इसको सख़्ती से मना किया। एक बार आप (सल्ल॰) की नज़र एक घोड़े पर पड़ी, जिसका चेहरा दाग़ा गया था। आप (सल्ल॰) ने कहा—

"जिसने इसका चेहरा दाग़ा है, उस पर अल्लाह की लानत हो।" (हदीस : तिरमिज़ी)

नबी (सल्ल॰) ने जानवरों को लड़ाने से भी मना फ़रमाया है। आप (सल्ल॰) के दयाभाव की एक मिसाल देखिए। एक सफ़र में आप (सल्ल॰) के साथियों ने एक पक्षी के दो बच्चे पकड़ लिए, तो पक्षी अपने बच्चों के लिए व्याकुल हुआ। आप (सल्ल॰) ने देखा, तो पूछा—"इसको किसने व्याकुल किया?" सहाबा ने कहा—"हमने इसके बच्चे पकड़ लिए।" आप (सल्ल॰) ने उन्हें छोड़ने का हुक्म दिया। (हदीस : अबू-दाऊद)

इसी से मिलती-जुलती एक घटना यह है कि नबी (सल्ल॰) के पास एक व्यक्ति आया और उसने कहा कि एक झाड़ी में चिड़िया के ये बच्चे थे, मैंने निकाल लिए। उनकी माँ मेरे ऊपर मण्डराने लगी। आप (सल्ल॰) ने कहा—

"जाओ और जहाँ से इन बच्चों को उठाया है, वहीं रख आओ।" (हदीस : अबू-दाऊद)

एक रिवायत में है कि एक ऊँट भूख से बेहाल था। आप (सल्ल॰) को देखकर वह बिलबिला उठा। आप (सल्ल॰) ने उसके मालिक को, जो एक अंसारी थे, बुलाकर चेतावनी दी—

"क्या तुम इन जानवरों के मामले में अल्लाह से नहीं डरते?" (हदीस : अबू-दाऊद)

हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-उमर (रज़ि॰) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने कहा—

"एक स्त्री को एक बिल्ली के कारण यातना दी गई, जिसको उसने बाँधकर रखा था यहाँ तक कि वह मर गई; तो वह स्त्री नरक में प्रविष्ट हो गई। उसने जब उस बिल्ली को बाँधकर रखा था तो उसे न तो खिलाया और न उसे छोड़ा कि धरती के कीड़े-मकोड़े आदि ही खा लेती।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

हज़रत अनस (रज़ि॰) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने इससे रोका है कि जानवरों को मारने के लिए बाँधा जाए।

(हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

जानवरों के साथ बेरहमी और निर्दयतापूर्वक व्यवहार करने के अनेक मामले इस्लाम के पूर्व अरब में पाए जाते थे। हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) ने उनके साथ की जा रही ज़्यादतियों का पूर्णतः निषेध कर दिया।

इस्लाम : कमज़ोरों के अधिकारों का रक्षक

■ डॉ॰ मुहम्मद रज़ीउल-इस्लाम नदवी

प्रत्येक वर्ष 10 दिसम्बर का दिन 'मानवाधिकार दिवस' के रूप में मनाया जाता है। आज से लगभग 57 साल पहले 1948 में 10 दिसम्बर को ही संयुक्त राष्ट्र के सदस्य देशों ने इस मशहूर प्रस्ताव को मंज़ूरी दी थी जो 'मानवाधिकार की सार्वभौमिक उद्घोषणा' (Universal Declaration of Human Rights) के नाम से जानी जाती है। इस उद्घोषणा में धाराओं की शक्ल में मानवाधिकार की व्याख्या की गई है और सदस्य देशों से कहा गया है कि वे इन अधिकारों की प्राप्ति को यक़ीनी बनाने की कोशिश करें और ऐसे क़ानून बनाएँ जो इनकी रक्षा की ज़मानत देते हों और इनके उल्लंघन की स्थिति में इन क़ानूनों का सहारा लिया जा सकता हो।

मानवाधिकार-सम्बन्धी यह घोषणा-पत्र उनकी कोशिशों और खींचतान का नतीजा है। ब्रिटेन के औपनिवेशिक क्षेत्रों के रहनेवाले उनसे वंचित थे। अमेरिका में कालों को गोरे नागरिकों के समान अधिकार हासिल नहीं थे। अमेरिका ने अफ़ग़ानिस्तान के जिन मासूम लोगों को आतंकवाद का आरोप लगाकर 'ग्वांतानामो बे' जेल में क़ैद कर रखा है उन्हें वे अधिकार नहीं दिए गए हैं जो अमेरिकी जेलों में अमेरिकी क़ैदियों को हासिल हैं। टी॰वी॰ पर कुछ अमेरिकी सैनिक क़ैदियों की तस्वीरें पश्चिमी संसदों में ज़लज़ला पैदा कर देती हैं लेकिन हज़ारों इराक़ी क़ैदियों की टेलीविज़न पर बार-बार नुमाइश, उनके बुनियादी अधिकारों के हनन और उन पर दिल दहला देनेवाले अत्याचारों से किसी के कानों पर जूँ तक नहीं रेंगती।

मानवाधिकार के सिलसिले में इस्लाम को अनेक पहलुओं से वरीयता हासिल है। जो अधिकार आज लोगों को लम्बे संघर्ष और जिद्दो-जुहद के बाद हासिल हुए हैं, इस्लाम आज से 1400 साल पहले ही एलान कर चुका था और रियासत को उसकी अदाइगी का पाबन्द बना दिया था।

> "इमाम जो लोगों पर हुक्मरानी कर रहा है वह उनका निगराँ है और उससे उनके बारे में पूछा जाएगा।" (हदीस : बुख़ारी)

इस्लाम के द्वारा दिए गए अधिकार न कभी रद्द हो सकते हैं, न उन्हें किसी हाल में टाला जा सकता है। यहाँ तक कि दुश्मनों और जंगी क़ैदियों को भी उनसे वंचित नहीं किया जा सकता—

"कोई नहीं जो अल्लाह की बातों को बदल सके।"

(क़ुरआन, सूरा-6 अनआम, आयत-34)

इस्लाम के नज़दीक समस्त मानवजाति उनसे लाभान्वित होगी चाहे उसका ताल्लुक़ किसी भी नस्ल से हो, कोई भी ज़बान बोलता हो, किसी भी धर्म का हो और किसी भी क्षेत्र का रहनेवाला हो।

"न अरबी को अजमी पर वरीयता है, न अजमी को अरबी पर,
न गोरे को काले पर, न काले को गोरे पर, सिवाय तक़वा के।"

(हदीस : मुसनद अहमद)

कमज़ोर वर्ग ही मानवाधिकार से वंचित रहते हैं, चाहे वे कमज़ोर सरकारें हों या कमज़ोर क़ौमें। समाज के कमज़ोर समुदाय हों या कमज़ोर लोग। शक्तिशालियों ने अपनी शक्ति के नशे में हमेशा उन्हें दबाया और कुचला है। इक़बाल ने सही कहा है—

"है जुर्मे-ज़ईफ़ी की सज़ा मर्गे-मुफ़ाजात"

इस्लाम कमज़ोरों के अधिकारों का रक्षक बनकर सामने आता है। वह विस्तारपूर्वक उनके अधिकारों को बयान करता और उन्हें अदा करने की ताकीद करता है। वह कहता है कि अधिकार अल्लाह तआला ने दिए हैं इसलिए यदि किसी ने उनकी अदाइगी में कोताही की या उन्हें पामाल किया तो अल्लाह तआला उस पर उसकी सख़्त पकड़ करेगा।

समाज का सबसे कमज़ोर वर्ग औरतों का है। वह हर दौर में अपने बहुत से अधिकारों से वंचित रही हैं और आज भी तमामतर तरक़्क़ियों और रौशनख़्यालियों के बावजूद शोषण का शिकार हैं। पहले उन्हें पुरुषों का पूरक समझा जाता था और आज भी उन्हें बेटर हाफ़ (Better Half) कहा जाता है। पहले उन्हें मीरास से वंचित रखा गया था और आज भी उनका यह अधिकार स्वीकार नहीं किया गया है।

पहले लड़की के जन्म को अशुभ समझा जाता था और उसके आने की सूचना से पूरा परिवार दुख में डूब जाता था। आज भी आधुनिक टेक्नॉलोजी के माध्यम से उनके जन्म को रोकने की कोशिश की जाती है। इस्लाम ने औरत को एक अलग शख़्सियत दी। उसे पुरुषों के समान हैसियत दी। उसने मर्दों के साथ औरतों का हिस्सा भी सुनिश्चित किया।

> "पुरुषों का उस माल में एक हिस्सा है जो माँ-बाप और नातेदारों ने छोड़ा हो और स्त्रियों का भी उस माल में एक हिस्सा है जो माल माँ-बाप और नातेदारों ने छोड़ा हो—चाहे वह थोड़ा हो या अधिक हो—यह हिस्सा निर्धारित किया हुआ है।"
>
> (क़ुरआन, सूरा-4 निसा, आयत-7)

> "विधवा या तलाक़शुदा औरत का निकाह नहीं किया जाएगा जब तक कि उसकी राय मालूम न कर ली जाए और कुँवारी लड़कियों का निकाह नहीं किया जाएगा जब तक कि उससे इजाज़त न ले ली जाए।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

इस्लाम ने मेहर को औरत का हक़ क़रार दिया और मर्द पर उसकी अदाइगी को अनिवार्य कर दिया।

> "और औरतों के मेहर ख़ुशदिली के साथ (फ़र्ज़ जानते हुए) अदा करो।" (क़ुरआन, सूरा-4 निसा, आयत-4)

इस्लाम ने औरतों के साथ अच्छा बरताव करने का हुक्म दिया—

> "उनके साथ भले तरीक़े से ज़िन्दगी बसर करो।"
>
> (क़ुरआन, सूरा-4 निसा, आयत-19)

उसने औरतों के साथ अच्छे सुलूक को मर्द की अज़मत और बेहतरी की पहचान क़रार दिया।

> "तुममें से बेहतर लोग वे हैं जो अपनी औरतों के साथ अच्छे अख़लाक़ से पेश आएँ।" (हदीस : तिरमिज़ी)

इस्लाम ने लड़कियों के जन्म को मुबारक कहा और उनकी परवरिश पर जन्नत की शुभ सूचना दी।

"जिस व्यक्ति ने दो लड़कियों की परवरिश की यहाँ तक कि वे बालिग़ हो गईं, क़ियामत के दिन मैं और वह इस तरह होंगे (यह कहकर आप सल्ल॰ ने अपनी उँगलियों को मिला लिया)।"

दूसरा कमज़ोर वर्ग यतीमों (अनाथों) का है। जिस बच्चे के सिर से बाप का साया उठ गया हो और जिस औरत का पति मर गया हो, दोनों को इस समाज में गिरी हुई नज़रों से देखा जाता है। कोई उनका पूछनेवाला भी नहीं होता। दोनों की ज़िन्दगियाँ बड़ी दयनीय होती हैं। विधवाओं को मनहूस समझा जाता है। उनकी ज़िन्दगी मौत से भी बदतर होती है।

इस्लाम ने यतीमों और विधवाओं के साथ अच्छा सुलूक करने, उनकी देखभाल करने और उनके हक़ अदा करने की ताकीद की है और इस मामले में कोताही करने और उनके हक़ मारनेवालों को अपराधी क़रार दिया है।

क़ुरआन यतीमों का माल हड़प करने से मना करता है। (क़ुरआन, सूरा-4 निसा, आयत-2; सूरा-6 अनआम, आयत-152; सूरा-17 बनी-इसराईल, आयत-34) और ऐसा करनेवालों को नरक में भेजने की बात करता है।

"जो लोग अनाथों के माल अन्याय के साथ खाते हैं वास्तव में वे अपने पेट आग से भरते हैं और वे अवश्य भड़कती हुई आग में पड़ेंगे।" (क़ुरआन, सूरा-4 निसा, आयत-10)

उन्हें तुच्छ समझने, धुतकारने और झिड़कने से रोकता है। (क़ुरआन, सूरा-89, फ़ज्र, आयत-17; सूरा-93, ज़ुहा, आयत-9; सूरा-107 माऊन, आयत-2) अनाथों के साथ अच्छा व्यवहार करने, उन्हें खाना खिलाने और उनपर ख़र्च करने का आदेश देता है। (क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा , आयत-83, 177, 215; सूरा-4 निसा, आयत-8, 36; सूरा-76 दह्र आयत-8; सूरा-90 बलद, आयत-15)

अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने फ़रमाया है—

"विधवाओं और मिस्कीनों के लिए दौड़-धूप करनेवाला उस व्यक्ति के समान है जो अल्लाह की राह में जिहाद करे और उस व्यक्ति की तरह है जो लगातार नमाज़ें पढ़े और लगातार रोज़े

रखे।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

"मैं और अनाथों की ज़िम्मेदारी उठानेवाला जन्नत में इस तरह होंगे।" (यह कहते हुए आप सल्ल॰ ने अपनी शहादत और बिचली उँगलियों को आपस में जोड़कर इशारा फ़रमाया।) (हदीस : बुख़ारी)

एक अवसर पर आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

"ऐ अल्लाह, जो व्यक्ति इन दो कमज़ोरों—अनाथ और महिला—का हक़ ज़ाया करे, मैं उसे ख़ताकार और अपराधी ठहराता हूँ।" (हदीस : इब्ने-माजा, अहमद, नसई)

अरब के समाज में ग़ुलाम तमाम मानवीय अधिकारों से वंचित थे। उनसे जानवरों के समान काम लिया जाता था। वे बेज़ुबान जीव की भाँति जीवन व्यतीत करते थे। समाज में उनका कोई स्थान न था। वही हाल आज हमारे देश में बन्धुआ मज़दूरों का है। इस्लाम ने ग़ुलामों को मानवीय आधार पर भाई क़रार दिया है और मालिकों को आदेश दिया है कि उनका पूरा ख़याल रखें और उनकी ताक़त से बढ़कर काम न लें। अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने फ़रमाया है—

"तुम्हारे ग़ुलाम तुम्हारे भाई हैं, अल्लाह ने उन्हें तुम्हारे अधीन कर दिया है। अतः जिसका भाई उसके अधीन हो, वह उसे भी वही खिलाए जो ख़ुद खाए और वही पहनाए जो ख़ुद पहने। तुम उनसे ऐसे काम न लो जो उनकी ताक़त से बाहर हो। यदि उनसे ऐसे काम लो तो उनकी मदद करो।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

मज़दूरी करनेवाले लोग समाज के कमज़ोर लोगों में से समझे जाते हैं। दो वक़्त की रोटी हासिल करने और अपने बाल-बच्चों का पेट पालने के लिए जिद्दो-जुहद करते हैं। बोझ ढोते और परिश्रम करते हैं। एक दिन की मज़दूरी न मिले तो उनके घर फ़ाक़ा हो जाए। आमतौर पर धनी और मालदार लोगों को उनके इस दर्द का एहसास नहीं होता। वे उनसे बेगार लेते हैं, पूरी मज़दूरी नहीं देते या उसे देने में टाल-मटोल करते हैं। अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने इस सिलसिले में सख़्त चेतावनी देते हुए कहा है—

"तीन आदमी ऐसे हैं जिनका मैं क़ियामत के दिन दुश्मन और मद्देमुक़ाबिल हूँगा। एक वह व्यक्ति जिसने किसी को मज़दूर रखा, उससे पूरा काम लिया लेकिन उसकी मज़दूरी नहीं दी।"
(हदीस : बुख़ारी)

एक दूसरी हदीस में है–

"मज़दूरों को उसका पसीना सूखने से पहले उसकी मज़दूरी दे दो।"

समाज के कमज़ोर वर्गों में अल्पसंख्यकों को संवैधानिक दृष्टि से भले ही समान अधिकार प्राप्त हों लेकिन व्यवहार में वे अक्सर बहुसंख्यक समुदाय के ज़ुल्मो-सितम के शिकार रहते हैं। आए दिन उनकी जान, माल, इज़्ज़त व आबरू पर हमले होते हैं और वे अपनी रक्षा का सामर्थ्य नहीं रखते। यदि बहुसंख्यक समुदाय को सरकार व प्रशासन का भी सहयोग मिल जाए तो न्यायपालिका भी अल्पसंख्यक समुदायों के अधिकारों की रक्षा नहीं कर पाती।

इस्लाम अपनी रियासत में रहनेवाले अल्पसंख्यकों के अधिकारों का रक्षक बनकर खड़ा होता है। वह मुसलमानों को चेतावनी देता है कि दूसरे धर्मों के माननेवालों के साथ अदलो-इनसाफ़ से पेश आएँ। उन पर अत्याचार न करें। उनकी इज़्ज़तो-आबरू से न खेलें और उनका माल न छीनें अन्यथा क़ियामत के दिन वे सख़्त सज़ा से दोचार होंगे। अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने फ़रमाया–

"ख़बरदार, जिसने ज़िम्मी (ऐसा ग़ैर-मुस्लिम जो इस्लामी रियासत में रह रहा हो) पर ज़ुल्म किया, उसकी तौहीन की, उसके सामर्थ्य से अधिक उससे काम लिया या बिना उसकी मर्ज़ी के उसकी कोई चीज़ ले ली तो मैं क़ियामत के दिन उस मज़लूम की तरफ़ से उसका मुक़द्दिमा पेश करूँगा।" (हदीस : अबू-दाऊद)

इस्लाम ऐसा वातावरण बनाना चाहता है कि यदि समाज में कोई व्यक्ति किसी पर ज़ुल्म कर रहा हो, तो दूसरे लोग उठ खड़े हों। वे ज़ालिम का हाथ

पकड़ लें और उसे ज़ुल्म करने से रोक दें। एक हदीसे-क़ुदसी में है—

"ऐ मेरे बन्दो ! मैंने अपने ऊपर ज़ुल्म को हराम कर लिया है और तुम्हारे बीच भी उसे हराम कर दिया है। इसलिए आपस में एक-दूसरे पर ज़ुल्म न करो।" (हदीस : मुस्लिम)

एक अवसर पर अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने सहाबियों को इस मामले में ग़फ़लत न बरतने की ताकीद करते हुए उनसे कहा—"लोग यदि किसी को ज़ुल्म करता हुआ देखें, लेकिन उसका हाथ न पकड़ें तो आशंका है कि अल्लाह सभी को सज़ा देगा।"

एक हदीस में है कि आप (सल्ल०) ने सहाबियों (रज़ि०) को सम्बोधित करते हुए कहा, "अपने भाई की मदद करो चाहे वह ज़ालिम हो या मज़लूम।" सहाबियों (रज़ि०) को आश्चर्य हुआ। उन्होंने आप (सल्ल०) से पूछा, "ऐ अल्लाह के रसूल! मज़लूम की मदद करना तो समझ में आता है। ज़ालिम की मदद करने का क्या मतलब है?" फ़रमाया, "उसका हाथ पकड़ लो, यही उसकी मदद है।" (हदीस : बुख़ारी)

इससे अच्छी तरह अनुमान लगाया जा सकता है कि यदि कोई समाज मानवाधिकार के सिलसिले में इतना जागृत हो जाए कि वह ज़ालिमों को ज़ुल्म न करने दे और मज़लूमों की रक्षा के लिए उठ खड़ा हो तो वह कितना बेहतरीन और उच्च नैतिक मूल्योंवाला समाज बन जाएगा।

कमज़ोर वर्गों के जिन अधिकारों का उल्लेख यहाँ किया गया है उनकी हैसियत केवल अच्छे और बेहतरीन उसूलों और नज़रियों की नहीं है, बल्कि उन पर सदियों तक अमल होता रहा है और ये वर्ग उन उसूलों से लाभान्वित होते रहे हैं। कभी उनके अधिकारों का हनन हुआ तो उनकी रक्षा करने और उनमें जागृति लाने की कोशिशें भी की जाती रहीं।

आवश्यकता इस बात की है कि इस्लामी शिक्षाओं को आम किया जाए और तमाम इनसानों को बता दिया जाए कि इस्लाम बुनियादी मानवीय अधिकारों का रक्षक है और विशेष रूप से कमज़ोर समुदायों के अधिकारों की रक्षा में उसे वरीयता हासिल है।

इस्लाम में अमून व शान्ति का सन्देश

■ संकलित

प्रसिद्ध लेखक लाला काशीराम चावला लिखते हैं कि इस्लाम शब्द अरबी के 'सलाम' शब्द से निकला है, जिसका अर्थ है—सलामती, अमून व शान्ति। इस्लाम अल्लाह, ईश्वर की पूर्ण प्रसन्नता-प्राप्ति का दूसरा नाम है। इस प्रकार इस्लाम का आधार है, अमून, शान्ति और अल्लाह, ईश्वर की प्रसन्नता की प्राप्ति। मौलाना मौदूदी (रह०) लिखते हैं कि मनुष्य को वास्तविक शान्ति उसी समय मिलती है, जबकि वह अपने-आपको अल्लाह (ईश्वर) को अर्पण कर दे और उसी के आदेशानुसार अपना जीवन व्यतीत करने लगे। ऐसे ही जीवन से हृदय और आत्मा को शान्ति पहुँचती है और समाज में भी इसी से वास्तविक शान्ति की स्थापना होती है। (इस्लाम धर्म, पृ० 7) इस्लाम धर्म माननेवाले को मुस्लिम (आज्ञाकारी) कहा जाता है। इससे विदित हुआ कि मुसलमान का वास्तविक उद्देश्य संसार में ईश-प्रसन्नता को प्राप्त करते हुए समाज में अमून व शान्ति स्थापित रखना है। पवित्र क़ुरआन में अल्लाह को 'अमून' व शान्ति का स्रोत लिखा गया है—

> "वह अल्लाह ही है, जिसके सिवा कोई उपास्य नहीं, वह बादशाह है बड़ा ही पवित्र, सर्वथा सलामती, अमून देनेवाला और संरक्षक है।" (क़ुरआन, सूरा-59 हश्र, आयत-23)

मौलाना मौदूदी (रह०) क़ुरआन की इस आयत की व्याख्या करते हुए लिखते हैं कि क़ुरआन की उपर्युक्त आयत में अल्लाह को 'अस-सलाम' कहने का अर्थ यह है कि वह साक्षात् 'सलामती' है। उसकी ज़ात इससे उच्च है कि कोई आफ़त या कमज़ोरी या कमी उसमें आ सके या कभी उसके कमाल को क्षति या हानि पहुँच सके। इस आयत के मूल में अरबी शब्द 'अल-मोमिन' प्रयुक्त हुआ है जिसकी धातु 'अमून' है। अमून का अर्थ है, भय से सुरक्षित होना और मोमिन वह है, जो दूसरों को अमून व शान्ति दे। अल्लाह को इस अर्थ में मोमिन कहा गया है कि वह अपनी सृष्टि को अमून देनेवाला है। उसकी सृष्टि इस भय से बिलकुल सुरक्षित है कि वह कभी उस

पर अत्याचार करेगा या उसका हक़ व अधिकार मारेगा या उसका अज्र (बदला) नष्ट करेगा या उसके साथ अपने किए हुए वादों के विरुद्ध जाएगा। फिर चूँकि इस कर्ता का कोई कर्म बयान नहीं किया गया है कि वह किसको 'अम्न' देनेवाला है, बल्कि केवल 'मोमिन' कहा गया है, इसलिए इससे यह अर्थ आप-से-आप निकलता है कि उसका अम्न सम्पूर्ण सृष्टि और उसकी हर चीज़ के लिए है।

मौलाना मौदूदी (रह०) लिखते हैं कि आज यह प्रश्न आप में से हर व्यक्ति के लिए और विश्व के सभी इनसानों के लिए एक चिन्ताजनक गुत्थी बना हुआ है कि आख़िर हम मनुष्यों के जीवन से शान्ति और चैन क्यों विदा हो गया है? क्यों प्रतिदिन हम पर मुसीबत और परेशानियाँ आ रही हैं? मनुष्य, मनुष्य के लिए दानव और ख़ूँख़ार भेड़िया बन गया है। लाखों मनुष्य दंगों और लड़ाई-संघर्ष में मारे जा रहे हैं। बस्तियाँ-की-बस्तियाँ उजड़ रही हैं। शक्तिशाली लोग निर्धनों और कमज़ोरों को खाए जा रहे हैं, धनवान ग़रीबों और निर्धनों का ख़ून चूस रहे हैं। इनसान का इनसान पर से विश्वास उठ गया है, धर्म की आड़ में अधर्म हो रहा है। हर तरफ़ अराजकता ही अराजकता फैल रही है। आख़िर इन सारी बुराइयों का कारण क्या है? ख़ुदा की ख़ुदाई में जिस ओर हम देखते हैं शान्ति-ही-शान्ति दिखाई देती है, नक्षत्रों में शान्ति है, पानी में शान्ति है, पेड़ों और जीव-जन्तुओं में शान्ति है, पूरे जगत् का प्रबन्ध शान्ति के साथ चल रहा है। कहीं अव्यवस्था या अशान्ति का चिह्न नहीं पाया जाता है, मगर एक इनसान की ही ज़िन्दगी क्यों इस ईश्वरीय देन से वंचित हो गई है? (शान्ति मार्ग, पृष्ठ :10)

इस अशान्ति का सबसे बड़ा कारण इनसान का अपने पैदा करनेवाले मालिक, ख़ालिक़, ईश्वर, अल्लाह को छोड़कर झूठे ख़ुदाओं को अपना आराध्य बना लेना; सत्य, धर्म और अहिंसा को छोड़कर असत्य, अधर्म और हिंसा का मार्ग अपना लेना है। ईश्वर और उसके दूतों व रसूलों की शिक्षाओं को छोड़कर शैतान के बताए हुए मार्ग का अंधानुसरण करना है। इसी वजह से हर तरफ़ अशान्ति व अराजकता का वातावरण बना हुआ है। आज का नौजवान वर्ग अपनी भारतीय संस्कृति व सभ्यता को छोड़कर पश्चिमी

सभ्यता में रच-बस गया है। ईश्वर ने जो शक्तियाँ मनुष्य को मानव-कल्याण और भलाई के लिए दी हैं, मनुष्य उन शक्तियों का प्रयोग मानव-हित के बजाय, उनका दुरुपयोग कर रहा है। मनुष्य ने अपने जीवन को वास्तविकता व सत्यता के एकदम विरुद्ध बना लिया है, इसी लिए वह दुख व परेशानी उठा रहा है तथा अशान्ति व आतंक के वातावरण में अपना जीवन व्यतीत कर रहा है।

स्वामी लक्ष्मीशंकराचार्य समाज में व्याप्त अशान्ति व आतंक के कारणों पर प्रकाश डालते हुए लिखते हैं कि भारत में लगभग 75 करोड़ हिन्दू और लगभग 25 करोड़ मुसलमान साथ-साथ रहते हैं। यदि हम एक-दूसरे के धर्म को, एक-दूसरे के विचारों को नहीं जानेंगे तो इनसानियत और समाज विरोधी तत्व आसानी के साथ हम लोगों के बीच भ्रम, सन्देह और अविश्वास पैदा कर देंगे, जैसा कि आजकल हो रहा है। इस देश व समाज के लिए यह एक बहुत बड़ी समस्या है।

अतः यह आवश्यक है कि मुसलमान भाइयों के धर्म इस्लाम को हिन्दू भाई जानें और सनातन वैदिक धर्म अर्थात् वेद, उपनिषद् और गीता को मुसलमान भाई जानें, ताकि धर्म के नाम पर कोई भी हमारे बीच भ्रम व ग़लतफ़हमी पैदा न कर सके। यह एक हिकमत (तत्वपूर्ण बात) है। इस हिकमत से सत्य सामने आएगा। भ्रम और सन्देह दूर होगा; हिन्दुओं और मुसलमानों में एक-दूसरे के प्रति विश्वास बढ़ेगा। सत्य के प्रति भी विश्वास बढ़ेगा और यही विश्वास भविष्य में लोगों के लिए एक नया रास्ता खोलेगा। यह ईश्वरीय ग्रन्थ क़ुरआन मजीद की भी हिकमत (तत्वपूर्ण शिक्षा) है कि—

> "(ऐ नबी!) कहो, ऐ किताबवालो! आओ एक ऐसी बात की ओर जो हमारे और तुम्हारे बीच समान है, यह कि हम अल्लाह के सिवा किसी की बन्दगी न करें, उसके साथ किसी को साझी न ठहराएँ और हममें से कोई अल्लाह के सिवा किसी को अपना रब न बना ले।" (क़ुरआन, सूरा-3 आले-इमरान, आयत-64)

इस हिकमत के अनुसार हम देखेंगे कि सनातन वैदिक धर्म और इस्लाम में क्या समानताएँ हैं। इस्लाम की बुनियाद शिर्क का विरोध अर्थात् 'ला

इला-ह इल्लल्लाह' अर्थात् अल्लाह के अतिरिक्त कोई उपासना के योग्य नहीं है। संसार के सबसे पुराने ग्रन्थ ऋग्वेद में एक ईश्वर की उपासना के बारे में आया है—

"इन्द्रं वो विश्वतस्परि हवामहे जनेभ्यः।
अस्माकमस्तु केवलः।। (ऋग्वेदः मण्डल-1, सूक्त-7, मंत्र-10)

भावार्थ : हे मनुष्यो! तुमको अत्यन्त उचित है कि मुझको छोड़कर उपासना करने योग्य किसी दूसरे देव को कभी मत मानो, क्योंकि एक मुझको छोड़कर कोई दूसरा ईश्वर नहीं है। (हिन्दी भाष्य महर्षि दयानन्द)

स्वामी जी अमन व शान्ति और इनसानों की भय-मुक्ति के बारे में आगे लिखते हैं कि परमेश्वर की शरण में गया ऐसा समर्पणकारी निष्काम उपासक आध्यात्मिक शान्ति और मोक्ष पाने का अधिकारी है। गीता में है—

"शान्तिं निर्वाणपरमां मत्संस्थामधिगच्छति।।"

(गीता, अध्याय-6, श्लोक-15)

भावार्थ : (ऐसा समर्पणकारी उपासक) मुझ में रहनेवाली परम आनन्द की सर्वोच्च शान्ति को प्राप्त होता है।

इसी तरह क़ुरआन मजीद में अल्लाह तआला फ़रमाता है—

"जिसने भी अपने-आपको अल्लाह के प्रति समर्पित कर दिया और उसका कर्म भी अच्छे-से-अच्छा हो तो उसका प्रतिदान उसके रब के पास है और ऐसे लोगों के लिए न तो कोई भय होगा और न वे शोकाकुल होंगे।" (क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, आयत-112)

सनातन वैदिक धर्म और गीता से यह सिद्ध होता है कि दैहिक, दैविक और भौतिक तीनों प्रकार की शान्ति पाने का और मोक्ष प्राप्त करने का सीधा व सरल रास्ता "ला इला-ह इल्लल्लाह" अर्थात् 'अल्लाह के सिवा कोई पूज्य नहीं' अर्थात् इस्लाम धर्म है।" (इस्लाम : आतंक या आदर्श, पृष्ठ-76,77,85)

प्रसिद्ध लेखक लाला काशीराम चावला लिखते हैं कि—अल्लाह के रसूल हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) व्यक्तिगत रूप से शान्तिप्रिय थे। आपकी शान्तिप्रियता का प्रमाण आपके उन आदेशों से मिलता है, जो आप अपनी सेना को दिया

करते थे—

"ईश्वर से डरो, अपनी इच्छाओं का दमन करो, ईश्वर का नाम लेकर जियो, ईश्वर के आज्ञानुसार जीवन-यापन करो, उसी से सहायता माँगो और उसी की सेना बनकर युद्ध करो, किसी को किसी प्रकार का धोखा न दो, विरोधी के माल की चोरी न करो। मृतक की लाश को नष्ट न करो। बूढ़ों-बच्चों और स्त्रियों पर हाथ न उठाओ। वृक्षों को अनावश्यक न काटो, पूजा-स्थलों को न गिराओ। तुम्हारा सरदार जिस स्थान पर तुम्हें नियुक्त कर दे, वहाँ स्थिर रहो। जो शरण माँगे उसे शरण दो। आक्रमण करते हुए ईश्वर को याद रखो। आग न लगाओ। खजूर और दूसरे फलदार वृक्षों को न काटो। फ़सलों को हानि न पहुँचाओ, न उन्हें जलाओ। बिना ज़रूरत मवेशियों को न मारो और न उन्हें ज़ख़्मी करो।"

(हदीस : मुस्लिम)

उपर्युक्त बातों से यह समझा जा सकता है कि जब इस्लाम में युद्ध के नियम इतने मानवतापूर्ण, न्याययुक्त और शान्तिदायक हैं, तो उसके साधारण नियम कितने शान्तिपूर्ण होंगे।

(इस्लाम मानवतापूर्ण ईश्वरीय धर्म, पृ॰ 19)

अल्लाह ने पैग़म्बर हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) को सारी दुनिया के लिए कृपा (रहमत) बनाकर भेजा है। पवित्र क़ुरआन में है—

"ऐ नबी, हमने तो तुमको दुनियावालों के लिए रहमत बनाकर भेजा है।" (क़ुरआन, सूरा-21 अंबिया, आयत-107)

एक व्यक्ति ने पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल॰) से कहा, "क़ाफ़िरों के विरुद्ध अल्लाह से दुआ कीजिए, उन्हें लानत भेजिए।" इस पर आप (सल्ल॰) ने कहा, "मुझे दुनिया में दया के लिए भेजा गया है, लानत करने के लिए नहीं।" (हदीस : मुस्लिम)

ईशदूत हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) की करनी और कथनी (अर्थात् हदीस) से, आपकी जीवनी से तथा क़ुरआन मजीद में अल्लाह की आयतों के विस्तृत अध्ययन से पाठक स्वयं देख व समझ सकते हैं कि इस्लाम ने शान्ति, दया व मानवता के उच्च व्यावहारिक आदर्शों को स्थापित किया है।

जीवन के प्रति सही दृष्टिकोण
इस्लाम की एक अनुपम देन

■ गुलज़ार सहराई

संसार के समस्त प्राणियों में इनसान ही एक ऐसा प्राणी है जिसे ईश्वर की ओर से वैचारिक एवं व्यावहारिक स्वतंत्रता प्रदान की गई है। यह अधिकार जहाँ इनसान के लिए ईश्वर का अनमोल उपहार है, वहीं यह उसके लिए एक बड़ी परीक्षा भी है। बुद्धि एवं विवेक के इसी स्वतंत्र उपयोग के द्वारा जहाँ इनसान ने भौतिक सफलता के कीर्तिमान स्थापित किए हैं, वहीं नैतिक एवं आध्यात्मिक स्तर पर उसने बुरी तरह ठोकरें भी खाई हैं। नैतिक मूल्यों का सही निर्धारण तथा आध्यात्मिक जीवन की वास्तविकता को ईश्वरीय मार्गदर्शन के बिना समझ पाना बुद्धि के वश की बात कभी नहीं रही। ईश्वरीय आदेशों की समुचित जानकारी के बिना जो लोग धर्म गुरु या आध्यात्मिक गुरु होने का दावा करते हैं, वे किस प्रकार आम जनता को मूर्ख बनाते हैं, यह बात किसी से छिपी नहीं है। इसके उदाहरण बराबर हमारे सामने आते रहते हैं।

दूसरी ओर जो लोग बुद्धि को ही सब कुछ समझते हैं, वे इस गुत्थी को सुलझा पाने में असमर्थ हैं कि आख़िर ज्ञान-विज्ञान से परिपूर्ण आधुनिक शिक्षा प्राप्त इनसान इन कथित धर्म गुरुओं के जाल में क्यों फँस जाते हैं? और क्यों बुद्धि को ताक़ पर रखकर निरे अन्धविश्वासी बन जाते हैं? इस प्रकार के लोग अस्ल में इस सत्य से अनभिज्ञ होते हैं कि दिव्य-शक्ति से डरना इनसान का एक नैसर्गिक गुण है। यही वजह है कि बौद्धिकता के तमाम दावों के बावजूद इनसान अपने इस गुण से पीछा नहीं छुड़ा सका है।

जब बुद्धि का ज़ोर होता है तो इनसान, अदृश्य होने के कारण, ईश्वर तक का इनकार कर बैठता है और जब अदृश्य शक्ति से डरने की भावना प्रबल रूप से उस पर हावी होती है, तो वह हवा, पानी, बिजली और आग ही नहीं, पेड़-पौधों यहाँ तक कि पत्थरों के आगे भी नतमस्तक हो जाता है।

मानव-प्रकृति की इस विचित्र एवं विरोधाभासी स्थिति का एहसास तो बहुत लोगों को है, परन्तु इसका मूल कारण न जान पाने की वजह से वे कुछ नहीं कर पाते।

इस विचित्र स्थिति से निकलने के लिए इनसान क्या करे? क्या वह मात्र बुद्धि को सर्वोपरि मानते हुए उसी का अनुसरण करे और हर उस बात को अन्धविश्वास ठहराए जो उसकी बुद्धि से परे हो? या फिर वह आस्था के नाम पर हर उस बात को स्वीकार कर ले, जो कथित धर्म गुरुओं द्वारा बताई जाए, चाहे बुद्धि उसे स्वीकार करे या न करे? निश्चय ही ये दोनों विचारधाराएँ ऐसी हैं जिनके बीच किसी प्रकार समन्वय नहीं हो सकता। दोनों के बीच सदैव संघर्ष की स्थिति बनी रहती है।

इस्लाम ने इन दोनों अतिवादी दृष्टिकोणों से हटकर एक तीसरा वैचारिक दृष्टिकोण पेश किया है जो एक ओर बुद्धिसंगत एवं तर्कसंगत भी है, दूसरी ओर वह इनसान की अदृश्य शक्ति से डरने की नैसर्गिक भावना को भी सही दिशा प्रदान करता है।

एकेश्वरवाद की अवधारणा : इस्लाम ने एक ओर तो बुद्धि को ही सब कुछ समझनेवाले भौतिकवादियों की इस धारणा का खण्डन किया कि यह ब्रह्माण्ड केवल एक आकस्मिक घटना के कारण स्वतः ही अस्तित्व में आ गया है और इसका कोई रचयिता नहीं है, क्योंकि इस दृष्टिकोण को स्वीकार करते ही मानव-जीवन पूरी तरह निरुद्देश्य हो जाता है तथा नैतिक-अनैतिक, अच्छाई-बुराई का निर्धारण करनेवाले सारे मूल्य निरर्थक हो जाते हैं।

दूसरी ओर इस्लाम ने इस विचारधारा का भी खण्डन किया कि इस ब्रह्माण्ड़ को अनेक अदृश्य शक्तियों ने मिलकर बनाया है या ईश्वर के साथ उसके अनेक सहयोगी भी हैं। यह धारणा भी तर्कसंगत नहीं है, क्योंकि यदि ऐसा होता तो उन अदृश्य शक्तियों में स्वयं वर्चस्व के लिए जंग छिड़ जाती। फिर यह भी सम्भव न था कि किसी भी मामले में उनमें मतभेद न होता। दोनों स्थितियों में इस सृष्टि की व्यवस्था का बिगड़ना अपरिहार्य था, जबकि सृष्टि की सुव्यवस्था स्वयं यह गवाही दे रही है कि इसके पीछे कोई एक ही सत्ता कार्यरत है।

इस्लाम ने इनसान को बताया कि इस पूरी सृष्टि को एक सर्वशक्तिमान ईश्वर ने बनाया है और वही इसकी पूरी व्यवस्था को चला भी रहा है। इस कार्य में उसका कोई समकक्ष अथवा साझीदार नहीं है। कुछ अदृश्य प्राणी (फ़रिश्ते) हैं, जिनसे वह काम लेता है परन्तु उनकी हैसियत मात्र आज्ञाकारी दास की है।

इस्लाम ने इनसान को इस सच्चाई से भी अवगत किया कि इस धरती पर उसका जन्म यूँ ही निरुद्देश्य नहीं हुआ कि वह बस मन चाहे ढँग से जीवन गुज़ारे और फिर मरकर सदैव के लिए अस्तित्वहीन हो जाए, बल्कि इनसान को मात्र परीक्षा हेतु इस भौतिक संसार में भेजा गया है। यहाँ यदि वह अपने स्रष्टा, पालनहार ईश्वर के आदेशों पर चलेगा और उसके द्वारा निषिद्ध ठहराए कार्यों से बचेगा तो मरने के बाद परलोक में उसे इस आज्ञाकारिता का पुरस्कार जन्नत (स्वर्ग) के शाश्वत सुखों के रूप में मिलेगा। इसके विपरीत यदि वह ईश्वरीय आदेशों की अवहेलना करते हुए मात्र अपनी इच्छा का दास बनकर जिएगा या फिर आस्था के नाम पर हर कहीं नतमस्तक होता फिरेगा (दूसरे शब्दों में बुद्धि को ताक़ पर रख देगा)। दोनों स्थितियों में उसे सत्यमार्ग से भटकने के अपराध में, मरने के बाद पारलौकिक जीवन में जहन्नम (नरक) की कठोरतम यातना का दण्ड भोगना होगा, जो स्वर्ग के सुखों की भाँति ही अन्तहीन होगा।

ईशदूतत्व की अवधारणा : इनसान की बुद्धि परोक्ष सम्बन्धी मामलों में उसका उचित मार्गदर्शन करने में असमर्थ है, इसलिए प्रायः वह बुद्धि को परे रखकर उसी भयभावना से वशीभूत होकर या तो स्वयं कुछ काल्पनिक उपास्य गढ़ लेता है या उन कथित धर्मगुरुओं पर आँखें मूँदकर विश्वास करता है, जो परोक्ष ज्ञानी होने का दावा करते हैं। दोनों स्थितियों में वह केवल अन्धेरे में भटकता और भ्रम में जीता है।

इस्लाम हमें बताता है कि इनसान न तो केवल बुद्धि के द्वारा ईश्वरीय आदेशों और उसकी पसन्द-नापसन्द को जान सकता है और न उसके लिए यह सम्भव है कि वह ध्यान-योग के द्वारा ईश्वर से साक्षात्कार कर उसकी मर्ज़ी को जान ले। यदि ऐसा होता तो फिर उस परीक्षा का कोई अर्थ न रह

जाता जिसके लिए इनसान को धरती पर पैदा किया गया है। इसलिए ईश्वर का उसकी दृष्टि से ओझल रहना अनिवार्य था। साथ ही यह भी ज़रूरी था कि प्रत्येक मनुष्य स्वयं अपने प्रयास से उसकी मर्ज़ी को न जान सके, बल्कि इस मामले में इनसान के मार्गदर्शन के लिए ईश्वर ने इनसानों में से ही कुछ विशिष्ट विभूतियों का चयन किया और फ़रिश्तों द्वारा उन पर अपने आदेश अवतरित किए। ईश्वर के ये सन्देष्टा विभिन्न कालों, विभिन्न भू-भागों में अवतरित हुए जिन्होंने मानवता को सत्य-मार्ग से अवगत किया। इस्लाम के अनुसार अन्तिम सन्देष्टा हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) हैं, जिन पर अवतरित क़ुरआन अन्तिम ईश-ग्रन्थ है जो आज भी अपने विशुद्ध मूल रूप में मौजूद है और इसमें एक अक्षर का भी फेरबदल नहीं हुआ है। इस्लाम के अनुसार हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) को ईश्वर का अन्तिम सन्देष्टा मानते हुए उनके लाए हुए ईश-ग्रन्थ क़ुरआन तथा स्वयं हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) का अनुसरण करना अनिवार्य है। साथ ही उन सभी विभूतियों को ईशदूत के रूप में मानना भी अनिवार्य है जिनका उल्लेख क़ुरआन में 'नबी' या 'रसूल' के शब्दों से किया गया है।

ईशदूत की यह अवधारणा मानवजाति के लिए कितना बड़ा वरदान है, इसका अनुमान उन लोगों की स्थिति को देखकर सहज ही लगाया जा सकता है जो मन की शान्ति पाने के लिए विभिन्न आध्यात्मिक गुरुओं या धर्म गुरुओं के चक्कर लगाते हैं, उनके परस्पर विरोधी एवं जटिल प्रवचनों को सुनते हैं और कभी इस उलझन से नहीं निकल पाते कि उनमें से किसे झूठा समझें और किसे सच्चा मानें। इसलिए कि उनके पास सच और झूठ का अन्तर स्पष्ट करनेवाली कोई कसौटी ही नहीं होती।

इस्लाम ने इस बात को पूरी तरह स्पष्ट कर दिया कि ईश्वरीय मार्गदर्शन पाने का एकमात्र माध्यम ईशदूत का अनुकरण है। किसी दार्शनिक या उपदेशक की बात भी तभी सही मानी जाएगी जब वह उसकी पुष्टि के लिए ईशदूत की शिक्षाओं और उसपर अवतरित ईश-ग्रन्थ से प्रमाण प्रस्तुत करे। यह सिद्धान्त देकर इस्लाम ने उन स्वयं-भू धर्म गुरुओं का रास्ता सदैव के लिए बन्द कर दिया, जो अपनी मनगढ़न्त बातों को बिना किसी प्रमाण के

धर्म और आध्यात्मिकता का नाम देकर जनसाधारण को मूर्ख बनाते हैं और स्वयं भी अन्धेरों में भटकते हैं तथा दूसरों को भी भटकाते हैं।

परलोक की अवधारणा : यह एक सर्वविदित सत्य है कि इनसान के प्रत्येक कर्म के पीछे कोई-न-कोई उद्देश्य छिपा होता है। दूसरे शब्दों में हम यह भी कह सकते हैं कि इनसान परिणाम की आशा के बिना कोई काम नहीं करता। जिस कार्य के सुखद परिणाम पर उसे जितना अधिक विश्वास होगा, उसके प्रति वह उतना ही सक्रिय नज़र आएगा। इसी प्रकार यदि किसी कार्य के दुष्परिणाम की उसे समुचित जानकारी हो जाए तो वह उससे यथासम्भव बचने का प्रयास करेगा।

इसके विपरीत यदि इनसान दूसरों को देखकर और स्वयं अपने अनुभवों से यह जान ले कि न तो अच्छाई का सुखद परिणाम मिलना अनिवार्य है और न यह निश्चित है कि बुरे काम का अंजाम बुरा ही मिले, तो ऐसी स्थिति में मानव को अच्छाई की प्रेरणा देने और बुराई से रोकने के सारे प्रयास विफल हो जाते हैं। जैसा कि हम वर्तमान समय में देख भी रहे हैं। समाज में कितनी ही नैतिक बुराइयाँ फैली हैं जिनके उन्मूलन के लिए लोग प्रयासरत भी हैं, इनमें भ्रष्टाचार का मामला तो सबसे ऊपर है। परन्तु क्या समाज से भ्रष्टाचार ख़त्म हो सका? उत्तर है कि नहीं। कारण स्पष्ट है कि हर कोई देख रहा है कि भ्रष्टाचार में लिप्त बड़े-बड़े लीडरों को उनके जुर्म की कोई सज़ा नहीं मिलती और यदि मिलती भी है तो वह ऐसी नहीं होती जो उन्हें आगे ऐसा करने से रोक सके तथा दूसरों के लिए भी शिक्षाप्रद सिद्ध हो।

यही हाल सच्चाई के रास्ते पर चलनेवालों का भी है। ऐसे लोगों की इस बिगड़ी व्यवस्था में कोई क़द्र नहीं है, बल्कि कुछ भौतिकवादी तो ईमानदारी को 'मूर्खता' का पर्याय बताने से भी नहीं हिचकते। उनका मानना है कि इस युग में ईमानदार वही हो सकता है जो मूर्ख होगा। यानी बेईमानी, धोखा, छल, कपट को इनसान के स्वाभाविक गुणों के रूप में स्वीकार कर लिया गया है।

ऐसा भी नहीं है कि इस समाज में केवल नास्तिक रहते हैं और सभी का इस पर मतैक्य हो चुका हो कि ईश्वर नाम की किसी सर्वोच्च सत्ता का कोई

अस्तित्व नहीं है; और यह कि मरने के बाद हर व्यक्ति को सदैव के लिए अस्तित्वहीन हो जाना है, बल्कि सच तो यह है कि समाज के अधिकांश लोग किसी-न-किसी धर्म से जुड़े होने के कारण न केवल ईश्वर में आस्था रखते हैं बल्कि मृत्योपरान्त मिलनेवाले दण्ड और प्रतिदान को भी किसी-न-किसी रूप में मानते हैं। परन्तु व्यावहारिक रूप में इन कथित धार्मिकों और घोर भौतिकवादी नास्तिकों में कोई अन्तर दिखाई नहीं देता। इसका कारण यह है कि एक तो उन्हें ईश्वर के गुणों एवं उसके अधिकारों का पूरी तरह बोध नहीं है, दूसरे यह कि उनके धर्म में मरने के बाद के प्रतिफल की अवधारणा बुरी तरह विकृत हो चुकी है। उदाहरणार्थ पुनर्जन्म की अवधारणा को ही लीजिए। कहने को इस धारणा में विश्वास रखनेवाले बहुत मिल जाएँगे परन्तु ऐसा व्यक्ति ढूँढ़े से भी न मिलेगा जो इस अवधारणा से न केवल पूरी तरह सन्तुष्ट हो, बल्कि दूसरों को भी तार्किक रूप से सन्तुष्ट करने की क्षमता रखता हो। स्पष्ट है कि जो धारणा इनसान की समझ ही में न आए वह उसके जीवन पर प्रभाव कैसे डाल सकती है?

इस्लाम हमें बताता है कि सर्वशक्तिमान ईश्वर ने हमें पैदा करके यूँ ही आज़ाद नहीं छोड़ दिया है कि हम जो चाहें करते फिरें, कोई कुछ पूछनेवाला नहीं। वह न केवल हमारी हर गतिविधि को देख रहा है, बल्कि हमारी नीयतों और इरादों तक को वह जान रहा है। यदि हम अपनी चतुराई से अपराधों की सज़ा पाने से बच जाते हैं तो इसका अर्थ यह कदापि नहीं कि यह कोई अन्धेर नगरी है, बल्कि ऐसा मात्र हमारी परीक्षा के कारण है और हमारे मरने के बाद एक समय ऐसा अवश्य आएगा जब हमें अपने हर अच्छे-बुरे कर्म का हिसाब देना होगा और उसी के हिसाब से पारलौकिक जीवन में हमें पुरस्कार या दण्ड दिया जाएगा।

परलोक की यह अवधारणा पूरी तरह तर्कसंगत भी है और न्यायसंगत भी। ऐसा कौन न्यायप्रिय व्यक्ति होगा जो यह न चाहेगा कि अपराधियों को उनके किए की भरपूर सज़ा मिले और पीड़ितों के साथ न्याय हो। परन्तु वर्तमान जगत् में क्या ऐसा हो पा रहा है? न्याय-व्यवस्था का क्या हाल है सभी जानते हैं, बल्कि सच पूछिए तो कुछ हालात में न्याय-व्यवस्था उचित

न्याय करने में असमर्थ भी सिद्ध होती है। उदाहरणार्थ एक व्यक्ति हज़ारों आदमियों को मौत के घाट उतार देता है। न्याय की माँग है कि उसे भी हज़ारों बार ही मौत दी जाए, परन्तु उसे उस व्यक्ति के बराबर एक ही बार मृत्युदण्ड दिया जा सकता है जिसने केवल एक व्यक्ति की हत्या की थी। परन्तु सर्वशक्तिमान ईश्वर इसकी पूरी सामर्थ्य रखता है कि वह हर व्यक्ति को उसके अपराधों के अनुकूल दण्ड दे और इसी प्रकार उसके सत्कर्मों के अनुरूप पुरस्कार भी।

इस्लाम द्वारा प्रदत्त उपर्युक्त तीनों अवधारणाएँ जीवन के प्रति इनसान के सही दृष्टिकोण को निर्धारित करती हैं। यह तो सर्वविदित ही है कि वैचारिक दृष्टिकोण ही जीवनशैली को निर्धारित करता है।

महिलाओं के साथ सद्व्यवहार और इस्लामी शिक्षाएँ

■ ज़हीर ललितपुरी

इस्लाम धर्म ने औरत के साथ हमेशा सद्व्यवहार करने की शिक्षा दी है किन्तु इस दौर में कन्या भ्रूण हत्या, दहेज प्रथा, चरित्र हनन, बलात्कार आदि गम्भीर अपराधों के साथ-साथ, उनके साथ दुर्व्यवहार, क्रूरता, हिंसा, अत्याचार, अन्याय और असमानता की घटनाओं में भी अभूतपूर्व वृद्धि हुई है। महिलाओं के प्रति दुर्व्यवहार की घटनाएँ इस बात का प्रतीक हैं कि औरतों का समाज में सम्मान घटा है तथा इसी वजह से उनकी संख्या में कमी होने से मानव-समाज को उसके घातक परिणाम भुगतने के लिए मजबूर होना पड़ रहा है। जबकि इस्लाम धर्म महिलाओं के प्रति सद्व्यवहार करने की शिक्षा देकर उनकी आज़ादी, जान-माल, इज़्ज़त व आबरू की हिफ़ाज़त करता है और मर्तबे व अहमियत को बढ़ाता है।

इतिहास इस बात का साक्षी है कि जब-जब दुनिया में ईश्वरवादी सत्ता स्थापित होती है, नैतिक वातावरण, उच्चतम मानव-मूल्य, उत्कृष्ट सिद्धान्त एवं मानदण्ड समाज का आधार बनते हैं तो औरतों की स्थिति में भी सुधार होता है और इसके विपरीत जब-जब ईश्वरीय सत्ता, नैतिक वातावरण, उच्चतम मानव-मूल्यों, सिद्धान्तों एवं मानदण्डों में कमी आती है, औरतों की स्थिति भी दयनीय हो जाती है। इसी लिए मानवता के इस्लामी दौर में, जब एक ईश्वर की सत्ता पर विश्वास, उसका डर और उसकी प्रसन्नता प्राप्त करने की इच्छा रखनेवाले इनसान अधिक संख्या में रहे हैं, औरतों की स्थिति अच्छी रही है और उनका समाज में सम्मान बढ़ा है। किन्तु वर्तमान अनीश्वरवादी, भौतिकवादी युग में उनकी स्थिति पहले से बदतर हो गई है।

औरतों के ख़िलाफ़ हिंसा, क्रूरता और दुर्व्यवहार का अर्थ है, औरतों के बुनियादी अधिकार एवं आज़ादी का हनन। वास्तव में औरतों से, महज़ औरत होने की वजह से असमानता का व्यवहार, शारीरिक व मानसिक

प्रताड़ना एवं प्रदूषित यौनाचार, जिससे उसे मानसिक और शारीरिक वेदना मिले या जिनसे उसे किसी प्रकार की शारीरिक, मानसिक, मनोवैज्ञानिक हानि होने की आशंका हो ऐसे सारे काम, औरत के प्रति दुर्व्यवहार, हिंसा और ज़ुल्म-ज़्यादती के काम हैं। प्राचीनकाल से ही औरतों और मर्दों के बीच असमानता और औरतों की कमज़ोरी की वजह से औरतों पर मर्द अत्याचार करते आए हैं और आज भी उनके साथ दुर्व्यवहार का कारण यही हैं। औरत होने की वजह से औरत के ख़िलाफ़ हिंसा भी एक प्रकार से उनके साथ असमानता का व्यवहार है और असमानता का व्यवहार भी हिंसा है।

औरतों के ख़िलाफ़ क्रूरता, हिंसा व लिंगभेद के आधार पर अन्याय और असमानता का व्यवहार विश्वव्यापी समस्या है। 'विश्व-स्वास्थ्य संगठन' के अनुसार भी औरतों के ख़िलाफ़ हिंसा, क्रूरता और दुर्व्यवहार एक गम्भीर समस्या है और यह उनके मानवाधिकारों का हनन है। शिक्षा की कमी और सामाजिक असमानता के कारण, औरतों के साथ, अजनबी व्यक्तियों और क़रीबी रिश्तेदारों, परिवार के सदस्यों के अलावा विवाहित जीवनसाथी द्वारा भी अमानवीय व्यवहार, घरेलू हिंसा और मारपीट किया जाना आम बात है। यह बुराई मानव-समाज के माथे पर कलंक और अभिशाप है।

लिंगभेद के आधार पर हिंसा का आम होना सिर्फ़ औरतों के बुनियादी अधिकारों का हनन ही नहीं, बल्कि सारे मानव-समाज के विकास में रुकावट, मानव-संसाधन में कमी और अनेक आर्थिक समस्याओं का कारण है। परिवार या समाज में औरतों के साथ सद्व्यवहार की कमी से, बच्चों की उचित परवरिश, देखभाल और शिक्षा-दीक्षा का काम प्रभावित होता है, फलस्वरूप उनका और आनेवाली पीढ़ियों का भविष्य अन्धकारमय हो जाता है। ऐसे बच्चों के अयोग्य या नाकारा हो जाने से उनसे समाज को कोई लाभ नहीं मिलता, बल्कि वे अपराधी बनकर और आपराधिक जगत् में सम्मिलित होकर मानव-समाज के लिए ख़तरा बन जाते हैं।

आज दुनिया पुनः उन कारणों को खोजने के लिए विवश है जिनके कारण औरतों के साथ पशुओं जैसा व्यवहार किया जाता है और एक ऐसी जीवन-व्यवस्था की तलाश जारी है जिसमें अन्य मानवीय समस्याओं के

साथ-साथ औरतों के ख़िलाफ़ हिंसा और दुर्व्यवहार का कोई स्थान न हो। हालाँकि, आज भी जहाँ-जहाँ इस्लामी शिक्षाओं की बुनियाद पर जीवन-व्यवस्था, संस्कृति और समाज क़ायम हैं वहाँ औरतों की स्थिति बेहतर है, क्योंकि इस्लाम ही एक ऐसा धर्म है जिसमें औरतों को सर्वाधिक संरक्षण प्रदान किया गया है तथा औरतों के साथ दुर्व्यवहार न करने एवं सद्व्यवहार करने के लिए बहुत सारे हुक्म, हिदायतें, नसीहतें और शिक्षाएँ दी गई है। क़ुरआन में स्पष्ट रूप में फ़रमाया गया है कि "औरतों के साथ नेकी का बरताव करो" और "आपसी सम्बन्धों में सहृदयता को न भूलो।"

ईश्वरीय वाणी पवित्र क़ुरआन और पैग़म्बर हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) की शिक्षाओं के द्वारा समाज में औरतों को बहुत ही सम्मानजनक स्थिति प्रदान की गई है। आप (सल्ल॰) ने विभिन्न हदीसों के माध्यम से माँ, बहन, बेटी और बीवी आदि सभी रिश्तों को बहुत पवित्र और महान बताते हुए उनके साथ सद्व्यवहार की शिक्षा दी है। हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) के अनुसार ख़ुदा और रसूल के बाद सबसे अधिक सम्मान, बड़ाई और बुलन्दी का स्थान माँ का है। दुनिया की बेहतरीन नेमतों में से कोई चीज़ नेक बीवी से बेहतर नहीं है और जिसके यहाँ लड़कियाँ पैदा हों और वह अच्छी तरह उनकी परवरिश करे तो यही लड़कियाँ उसके लिए दोज़ख़ से आड़ बन जाती हैं। वस्तुतः इस्लामी जीवन-व्यवस्था में हर रूप में औरतों को सम्मान देने और सद्व्यवहार करने की शिक्षा दी गई है।

एक बार एक शख़्स ने जब हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) से पूछा कि मुझ पर सबसे अधिक सद्व्यवहार का अधिकार किसका है? तो आप (सल्ल॰) ने माँ के स्थान को स्पष्ट करते हुए फ़रमाया—"तेरी माँ का।" उसने फिर पूछा कौन?, फ़रमाया—"तेरी माँ।" उसने फिर पूछा और कौन? फ़रमाया "तेरी माँ।" उसने फिर पूछा और कौन? फ़रमाया—"तेरा बाप।" इसी तरह बीवी के रूप में और अन्य रिश्तों में एक औरत के साथ अच्छा व्यवहार करने की हिदायत आप (सल्ल॰) ने इस प्रकार दी है—"तुममें से अच्छे लोग वे हैं जो अपनी बीवियों के प्रति अच्छे हैं और अपने परिवार के सदस्यों के साथ मुहब्बत और मेहरबानी का व्यवहार करते हैं।" एक जगह आप (सल्ल॰) ने

फ़रमाया कि दुनिया की चीज़ों में मुझे सबसे अधिक प्रिय, औरत और ख़ूशबू है और मेरी आँखों की ठण्डक नमाज़ है।

एक बार मुहम्मद (सल्ल॰) ने कहा कि औरत पसली (जोकि टेढ़ी होती है) की तरह है। अगर तू उसे सीधा करना चाहे तो तोड़ बैठे और अगर इससे फ़ायदा उठाएगा तो उसकी टेढ़ के बावजूद उससे फ़ायदा उठाएगा। आप (सल्ल॰) के इस कथन से यह शिक्षा मिलती है कि औरत की प्रकृति ऐसी है कि उसके साथ नरमी बरतकर अच्छे व्यवहार से उसका फ़ायदा उठाया जा सकता है। यदि उसके साथ दुर्व्यवहार किया जाएगा तो उसके परिणाम ख़राब ही निकलेंगे। इस प्रकार इस्लाम ही वह जीवन-व्यवस्था है जिसने औरत के बारे में न सिर्फ़ मर्दों की मानसिकता को बदला है, बल्कि औरतों की मानसिकता को खुद के बारे में बदला है। इस्लामी शिक्षाओं में बीवियों पर सख़्ती करने से मना किया गया है। माओं की नाफ़रमानी करना, हक़दारों के हक़ न देना और बेटियों को ज़िन्दा दफ़न करना हराम कहा गया है तथा सदैव अच्छा व्यवहार करने का हुक्म दिया गया है।

हज के मौक़े पर आप (सल्ल॰) ने अल्लाह की प्रशंसा व याददिहानी के बाद, नसीहत करते हुए फ़रमाया कि सुनो, औरतों के सम्बन्ध में भलाई करने की नसीहत क़बूल करो। वे तुम्हारे मातहत हैं, तुम्हें उनपर किसी क़िस्म की सत्ता का, ताक़त का प्रयोग करने का अधिकार नहीं, सिवाय इसके कि वे खुली फिरें और बेहयाई करें। हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) ने सिर्फ़ माँ, बहन, बेटी और बीवी या परिवार की दूसरी औरतों के साथ ही सद्व्यवहार करने की शिक्षा नहीं दी बल्कि दासियों, सेविकाओं, नौकरानियों और लौंडियों तक के साथ बेहतरीन व्यवहार करने की शिक्षा दी है। आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया—''जिस किसी शख़्स के पास लौंडी (दासी) हो, और अगर उसने उसे शिक्षा दी और ख़ूब अच्छी शिक्षा दी और उसे अच्छी सभ्यता और संस्कार सिखाए और फिर उसे आज़ाद करके उससे शादी कर ली तो दोगुना पुण्य प्राप्त होगा।'' जब अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) की मृत्यु हुई तो आख़िरी वक़्त उनकी ज़बान पर ''लौंडी, ग़ुलाम और नमाज़'' शब्द थे अर्थात् आख़िरी साँस तक आप (सल्ल॰) लौंडियों और ग़ुलामों के साथ अच्छा

व्यवहार करने की नसीहत करते रहे।

अतः स्पष्ट है कि इस्लामी शिक्षाओं में क़दम-क़दम पर औरतों के साथ अच्छा व्यवहार करने की शिक्षा है। इसी नैतिक और वैधानिक सुधार का नतीजा है कि इस्लामी सोसायटी में औरत को वह बुलन्द हैसियत मिली हैं जिसकी मिसाल पूरी दुनिया की सोसायटी में नहीं मिलती। आज भी इनसान की सोच और फ़िक्र की तरक़्क़ी उस बुलन्दी तक नहीं हुई है जहाँ तक इस्लामी सोच और फ़िक्र पहुँची है। पश्चिम ने औरत को जो कुछ दिया है, औरत की हैसियत से नहीं दिया है, बल्कि मर्द बनाकर दिया है। औरत दरहक़ीक़त अब भी उसकी निगाह में वैसी ही ज़लील है जैसी पुराने पिछड़े हुए दौर में थी। घर की मालकिन, पति की पत्नी, बच्चों की माँ, किसी की बहिन और बेटी, एक प्राकृतिक, स्वाभाविक और वास्तविक औरत के लिए आज भी कोई इज़्ज़त नहीं है। इज़्ज़त है तो उस मर्द रूपी औरत की जो शारीरिक बनावट के तौर पर औरत है मगर मानसिक और बौद्धिक रूप में मर्दों के समान है, जो समाज, सभ्यता और संस्कृति के विकास के लिए मर्दों की तरह मेहनत और काम करती है। ज़ाहिर है उसके औरतपन की इज़्ज़त नहीं है बल्कि मर्दानगी की इज़्ज़त है। अफ़सोसनाक बात है कि आज की औरत भी ख़ुद को मर्द की तरह ज़िन्दा रखने में अपनी बेहतरी समझती है।

इस मानसिक दिवालियेपन का सबूत यह है कि पश्चिमी सोच की औरत मर्दाना लिबास गर्व के साथ पहनती है, जबकि कोई मर्द ज़नाना लिबास पहनकर, सरेआम गर्व के साथ आने का ख़याल भी नहीं कर सकता। किसी मर्द की बीवी बनकर ज़िन्दगी गुज़ारने में वर्तमान औरतें बेइज़्ज़ती महसूस करती हैं, जबकि शौहर बनना किसी भी मर्द के लिए स्वाभिमान का विषय है। औरतें तो मर्दों के काम करने में इज़्ज़त महसूस करती हैं जबकि कोई मर्द घरेलू काम करने, बच्चों की देखभाल करने और रसोई आदि जैसे ख़ालिस औरतों का काम करना अपने लिए सम्मान का विषय नहीं समझता।

अतः स्पष्ट है कि पश्चिमी विचारधारा और वर्तमान विकसित समाज में औरतों को सामान्य औरत माँ, बहन, बेटी और पत्नी होने की हैसियत से इज़्ज़त नहीं मिली है। मेडम, महोदया और माननीया जैसे आधुनिक सम्मान

सूचक शब्द उसके लिए नहीं बल्कि एक मर्दनुमा औरत के लिए हैं। एक सामान्य औरत को तो आज भी अबला, पतिता, कुलटा, सेविका और दासी जैसे शब्दों से सम्बोधित किया जाता है।

वास्तव में यह काम सिर्फ़ इस्लामी शिक्षाओं, आस्थाओं, मान्यताओं, मानव-मूल्यों और मानदण्डों की देन है कि औरत को सामाजिक और सांस्कृतिक रूप से, उसके स्वाभाविक रूप में स्वीकार करते हुए सम्मानजनक स्थान मिला हुआ है और सच्चे अर्थों में उसे बुलन्द मर्तबे पर रखा गया है। इस्लामी जीवन-व्यवस्था में, औरत को औरत और मर्द को मर्द के प्राकृतिक, स्वाभाविक और वास्तविक रूप में रखते हुए, दोनों से अलग-अलग काम लेने की शिक्षा दी गई है जिसे क़ुदरत ने उनके लिए निर्धारित किया है और जिनके लिए उनको पैदा किया गया है। दोनों को, उनके स्वाभाविक रूप में क़ायम रखते हुए, सम्मान, विकास और सफलता के समान अवसर प्रदान किए गए हैं। औरतपन और मर्दानगी दोनों इनसानियत के लिए ज़रूरी हैं। समाज के निर्माण और विकास के लिए दोनों का समान महत्व है। दोनों अपने-अपने दायरे में रहते हुए जिन ज़िम्मेदारियों का निर्वाह करते हैं उनका समान महत्व है और मानवता के हित में है।

मुस्लिम औरत दीन और दुनिया, दोनों में भौतिक, आध्यात्मिक और वैज्ञानिक दृष्टि से उन्नति के उन उच्चतम शिखरों तक पहुँच सकती है जहाँ तक एक मर्द पहुँच सकता है और औरत होना किसी तरह से उसकी तरक़्क़ी की राह में रोड़ा नहीं बन सकता। ऐसा भी नहीं है कि अन्य जीवन-व्यवस्थाओं में औरतों के साथ अच्छा व्यवहार करने की शिक्षाएँ नहीं दी जाती हैं। विभिन्न प्राचीन जीवन-व्यवस्थाओं में, धार्मिक आन्दोलनों एवं सामाजिक सुधारों के लिए औरतों की स्थिति बेहतर बनाने के प्रयास किए गए हैं।

वर्तमान-काल में भी उनकी स्थिति में सुधार के लिए विशेष प्रयास किए जा रहे हैं। लेकिन उन्नति के इस नए दौर में आज भी, अन्य मामलों की तरह औरतों के साथ सद्व्यवहार के मामले में भी, दुनिया इस्लाम से बहुत पीछे है।

दहेज कुप्रथा के अन्त का आह्वान

■ संकलित

दहेज नामक कुप्रथा का न तो कोई सम्बन्ध इस्लाम की सामाजिक व पारिवारिक शिक्षाओं से हैं और न ही यह मुस्लिम समाज के द्वारा पैदा की गई है। भारतीय समाज का अध्ययन करने से यह पता चलता है कि यह कुप्रथा भारत में प्राचीन काल से मौजूद थी। भारतीय समाज में इस तरह की कई प्रथाएँ पाई जाती थीं, जिनमें से अधिकांश परम्पराओं का आरम्भ किसी अच्छे उद्देश्य की पूर्ति के लिए किया गया था, लेकिन समय बीतने के साथ-साथ इन परम्पराओं एवं प्रथाओं की उपयोगिता पर प्रश्न चिह्न लगता गया, जिसके परिणामस्वरूप सामाजिक एवं पारिवारिक रूप से ऐसी अनेक प्रथाएँ व मान्यताएँ आज अपनी उपयुक्तता खो चुकी हैं। वहीं दूसरी तरफ़ कुछ रस्म, रीति-रिवाज, चलन, प्रथाएँ एवं परम्पराएँ ऐसी हैं, जो बदलते समय के साथ-साथ कुप्रथाएँ एवं ग़लत परम्पराएँ बनकर विकराल रूप धारण करती जा रही हैं।

दहेज प्रथा ऐसी ही एक कुप्रथा है, जो न जाने कितने परिवारों को अपने काल का ग्रास बना चुकी है। अगर हम इतिहास का अवलोकन करें, तो यह बात हमारे सामने आती है कि उत्तर वैदिक काल में शुरू हुई यह परम्परा आज अपना वीभत्स और घिनौना रूप धारण कर चुकी है। ऋग्वैदिक काल में इस प्रथा को कोई मान्यता प्राप्त नहीं थी। अथर्ववेद के अनुसार उत्तरवैदिक काल में इस प्रथा की शुरुआत हुई जिसमें कन्या-पक्ष के लोग (कन्या का पिता) विवाह के उपरान्त कन्या को विदा करते समय उपहारस्वरूप अपनी इच्छा से वर पक्ष को कुछ धन व सामग्री देता था, जिसे वरपक्ष सहर्ष स्वीकार कर लेता था। जिसे दहेज नहीं, बल्कि 'वहतु' के नाम से जाना जाता था। इस 'वहतु' पर पति या ससुरालवालों का कोई अधिकार नहीं होता था। इस पर केवल स्त्री का अधिकार होता था। उत्तरवैदिक काल में जो भी ग्रंथ लिखे गए उन ग्रंथों में कहीं भी दहेज प्रथा का कोई भी प्रसंग नहीं मिलता।

मध्यकाल में इस प्रथा में थोड़ा-सा बदलाव आया। उत्तरवैदिक काल में 'वहतु' नाम से जो प्रथा प्रचलित थी, मध्यकाल में उस प्रथा को 'स्त्री-धन' के रूप में पहचान मिलने लगी। इसका स्वरूप 'वहतु' के ही समान था। इस प्रथा में कन्या का पिता स्वेच्छा से जो धन या उपहार देकर अपनी बेटी को विदा करता था, इसके पीछे मुख्य कारण यह था कि किसी घोर संकट या विपत्ति के अवसर पर कन्या-पक्ष द्वारा दिया गया उपहारस्वरूप धन कन्या या उसके ससुरालवालों के काम आएगा। बाद में इस प्रथा के स्वरूप में थोड़ा-सा बदलाव आ गया। इस काल में विदाई के समय धन-दौलत को महत्व दिया जाने लगा। विशेष रूप से राजस्थान में इस कुप्रथा के महत्व को बहुत ज़्यादा बढ़ा दिया गया। राजस्थान के उच्च व धन-दौलत से सम्पन्न राजपूत समाज अपनी ऊँची शान, मान-मर्यादा व प्रतिष्ठा स्थापित करने के लिए उपहार के रूप में अधिक-से-अधिक धन का व्यय करने लगे, जिसमें 'स्त्री-धन' शब्द पूरी तरह विलुप्त हो गया और उसकी जगह यहीं से 'दहेज' शब्द की उत्पत्ति हुई। आधुनिक काल में यह प्रथा इतनी विकराल एवं वीभत्स रूप धारण करके उभरी कि समाज के हर वर्ग को अपनी चपेट में ले लिया। धन का लालच इतना बढ़ा है कि लड़केवालों ने लड़कों को व्यापार का सामान बना दिया और शादी के अवसर पर दहेज के नाम पर मुँह माँगी क़ीमत वसूलने लगे।

इतिहास का अध्ययन करने से यह विदित होता है कि अरबवासियों में इस रस्म का अस्तित्व नहीं था। स्वयं अल्लाह के रसूल हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) की पवित्र जीवनी से कहीं मालूम नहीं होता कि आप (सल्ल०) को शादी-विवाह में कोई चीज़ दहेज के नाम पर दी गई हो। यहाँ तक कि हज़रत अबू-बक्र सिद्दीक़ (रज़ि०) ने भी हज़रत आइशा (रज़ि०) की शादी के शुभ अवसर पर आप (सल्ल०) को कोई चीज़ दहेज के रूप में नहीं दी। स्वयं अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने अपनी चार बेटियों की शादी में दहेज के नाम पर कोई भी चीज़ नहीं दी है।

अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने जब हज़रत फ़ातिमा (रज़ि०) की शादी हज़रत अली (रज़ि०) से की तो उन्हें विदा करते समय कुछ सामान भी दिया

था, जिसे दहेज कहा जाता है। यह सामान क्या था, इसका विवरण अल्लामा सुलैमान नदवी, सीरतुन्नबी, भाग 2 में लिखते हैं—"दहेज में एक पलंग और बिस्तर दिया।

सहाबा के वृत्तान्त के बारे में एक प्रसिद्ध अरबी पुस्तक 'इसाबा' में लिखा है कि आप (सल्ल॰) ने एक चादर, दो चक्कियाँ और एक मश्क भी दी थी और विचित्र संयोग है कि यही दोनों चीज़ें जीवन भर उनके साथ रहीं।" (सीरतुन्नबी, भाग-2, पृ॰ 428)

इस व्याख्या से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि दहेज की यह रस्म न तो इस्लाम से पहले अरबों में प्रचलित थी और न इस्लाम आने के बाद अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने इसे जारी किया। यहाँ पर इस बात का उल्लेख कर देना आवश्यक है कि हज़रत अली (रज़ि॰) का पालन-पोषण पाँच वर्ष की आयु से ही आप (सल्ल॰) के घर पर हो रहा था। इसलिए न उनके पास जीवन-यापन का कोई साधन था, न अपना कोई घर था और न कोई आधारभूत सामग्री। उनके पास न अलग से कोई पूँजी थी और न ही कोई जीविकोपार्जन का साधन। इस सिलसिले में मौलाना इसमाईल पानीपती लिखते हैं—

"हिजरत के लगभग डेढ़ साल बाद आप (सल्ल॰) ने अपनी छोटी बेटी हज़रत फ़ातिमा (रज़ि॰) का निकाह हज़रत अली (रज़ि॰) से कर दिया। हज़रत अली (रज़ि॰) के पास कुछ भी न था। न रहने को मकान, न खाने को रोटी। ज़िरह (कवच) बेचकर शादी और वलीमे (प्रीतिभोज) का प्रबन्ध किया। यह ज़िरह सवा सौ रुपये में बेची गई। एक अन्सारी सहाबी हारिस-बिन-नोमान (रज़ि॰) ने अपने मकानों में से एक मकान दिया, जिसमें हज़रत अली (रज़ि॰) ने दुल्हन को उतारा और इस प्रकार अपना दाम्पत्य जीवन प्रारम्भ किया।"

इससे मालूम होता है कि शादी के समय तक हज़रत अली (रज़ि॰) आप (सल्ल॰) के पास रहते थे। शादी के बाद जब ये दोनों हज़रत हारिस-बिन-नोमान (रज़ि॰) के दिए हुए मकान में जाने लगे तो अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने अपने घर से कुछ ज़रूरत की चीज़ें भी उन्हें दे दीं। इन चीज़ों के देने से किसी रस्म पर अमल करना अभीष्ट न था। ऐसी सूरत और हालात में दिए

गए इस सामान को आजकल के दहेज की बुनियाद बनाना बहुत अनीति और हठधर्मी की बात है। इस विषय पर आधुनिक युग के एक इस्लामी विद्वान मौलाना सैयद उरूज क़ादरी साहब लिखते हैं—

"हज़रत फ़ातिमा (रज़ि॰) को आप (सल्ल॰) ने जो सामान दिया था उनकी ज़रूरतों को देखते हुए दिया था। मगर वह दहेज की कोई रस्म न थी। लेकिन आलिमों ने उसे दहेज ही कहा है और शादी के समय लड़की को कुछ सामान देने की दलील बनाया है।"

इसके बाद वे कहते हैं, "अगर ये चीज़ें शर्त और ज़बरदस्ती के तौर पर न हों और न सन्तुलन की सीमा से बढ़ी हुई हों, तो नाजाइज़ नहीं है...मसला कोई भी हो मध्य मार्ग और सन्तुलन को हाथ से न जाने देना चाहिए।"

(ज़िन्दगी मासिक, मुहर्रमुल-हराम, 1403 हिजरी)

भारतीय समाज में प्रचलित दहेज प्रथा को जड़ से नष्ट करने के लिए हमें सोच-विचार करके ऐसे उपाय अपनाने चाहिएँ जिसके द्वारा हिन्दू समाज व मुस्लिम समाज से इस बुरी रस्म को उखाड़ फेंका जा सके। ऐसी सूरत में मुस्लिम समाज के आदरणीय विद्वानों, आलिमों और मुफ़्तियों को चाहिए कि वे लोगों को इस तरह के निकाह के शरई दोषों से परिचित कराएँ और अपने प्रभाव-क्षेत्र में इस बुरी रस्म (परम्परा) को मिटाने का हर सम्भव प्रयास करें। हिन्दू समाज के आदरणीय धर्मगुरुओं से भी अनुरोध है कि हिन्दू समाज में फैली दहेज रूपी इस प्रथा को समाप्त करने के लिए यथासम्भव प्रयास करें, ताकि समाज में विद्यमान इस प्रथा को जड़ से ख़त्म किया जा सके और कोई भी महिला दहेज-हत्या की शिकार न होने पाए।

इसके अतिरिक्त औरतों के समाचार-पत्रों और पत्रिकाओं को भी इस विषय पर विशेष ध्यान देना चाहिए और मुसलमान लड़कियों में मान-सम्मान के भावों को इस प्रकार जागृत किया जाए कि वे ऐसे नौजवानों से विवाह करने के मुक़ाबले में ऐसे नेक नौजवानों से शादी करें जो दहेज-लोभी न हों। इसके साथ-साथ मुस्लिम नौजवानों में ज़िम्मेदारी का एहसास और स्वाभिमान की ऐसी भावना पैदा की जाए कि वे जब भी शादी करें वह शादी, दहेज मुक्त व इस्लामी शरीअत के अनुसार हो।

अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध और इस्लाम की शिक्षाएँ

■ **मुशर्रफ़ अली**

इस्लाम मानव-एकता का समर्थक और आवाहक है। इस्लाम के अनुसार राष्ट्रीयता, रंग, धर्म, भाषा आदि किसी भी आधार पर मनुष्य-मनुष्य में अन्तर नहीं किया जा सकता । मनुष्यों का सांसारिक विभाजन मात्र पहचान के लिए है। वास्तविकता यह है कि धरती के सारे मनुष्य एक ही जोड़े के वंशज हैं। यह एक ही परिवार है जो आदम और हव्वा की सन्तान से बढ़कर समस्त धरती पर फैल गया है। मनुष्य तो समस्त विश्व का निवासी है, देशों का विभाजन तो प्रशासनिक आवश्यकताओं के लिए किया गया है।

संख्या की अधिकता के कारण मानव-एकता गुम हो गई है। वास्तव में सभी मनुष्य भाई-भाई हैं। रंग, रूप, भाषा और पहनावे का अन्तर तो भौगोलिक और ऐतिहासिक कारणों से है। वास्तव में मनुष्य सभी बराबर हैं, सभी को समान मानवाधिकार प्राप्त हैं, विकास के अवसर भी सबके लिए समान हैं। क़ुरआन की शिक्षाओं और अल्लाह के रसूल हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) की हदीसों के अनुसार मनुष्य धरती पर अल्लाह का प्रतिनिधि है और अत्यधिक प्रतिष्ठित है। स्पष्ट है कि प्रतिनिधि स्वयं-भू नहीं होता, बल्कि वह अपने नियुक्त करनेवाले स्वामी के सामने जवाबदेह होता है। उसका स्वामी उससे उसके हर काम के बारे में पूछ सकता है। प्रतिनिधि का प्रथम दायित्व यह है कि वह जिसका प्रतिनिधि है, उसकी सत्ता को स्वीकार करे और उसके आदेशों के अनुसार ही सारे काम करे। अल्लाह का प्रतिनिधि होने की हैसियत से वह श्रेष्ठतम सृष्टि है। वह संसार की प्रत्येक वस्तु से उत्तम है और संसार की सभी वस्तुएँ उसके अधीन और सेवार्थ हैं।

मानव-एकता और धरती पर अल्लाह का प्रतिनिधि होने की इस्लामी धारणा को समझने के बाद अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों की इस्लामी धारणा को समझा जा सकता है। अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के इस्लामी सिद्धान्त जो

इस्लामी राज्य के अन्य राज्यों से सम्बन्धों को निर्देशित करते हैं इस प्रकार हैं—

(1) **शान्ति और सुरक्षा का विकास :** इस्लाम शब्द का अर्थ है 'शान्ति' और 'सुरक्षा'। इसका एक अर्थ अल्लाह के प्रति पूर्ण समर्पण भी है। इस प्रकार इस्लाम शान्ति का धर्म है और इस्लामी राज्य का अन्य राज्यों के साथ सम्बन्ध के बारे में मूल सिद्धान्त है—"शान्ति सबके साथ और युद्ध किसी के साथ नहीं।" दूसरे शब्दों में, "मित्रता सबके लिए और द्वेष किसी के लिए नहीं।" क़ुरआन किसी भी हाल में आक्रामक युद्ध की अनुमति नहीं देता, वह अपने माननेवालों को केवल तभी हथियार उठाने की अनुमति देता है, जब उसके सिवा कोई और चारा न रह गया हो—

> "तुम अल्लाह के मार्ग में उन लोगों से लड़ो, जो तुम से लड़ते हैं, लेकिन ज़्यादती न करो कि अल्लाह ज़्यादती करनेवालों को पसन्द नहीं करता।" (क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, आयत-190)

इस्लाम का इतिहास साक्षी है कि अल्लाह के रसूल हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) और आप (सल्ल०) के सहाबा (रज़ि०) ने तलवार तब उठाई जब इस्लाम के दुश्मनों ने उन्हें हद से ज़्यादा परेशान कर दिया, यहाँ तक कि उन्हें उनके घरों से निकाल दिया। ऐसी ही हालत की ओर क़ुरआन की यह आयत संकेत करती है—

> "(युद्ध की) अनुमति दी गई उन लोगों को, जिनके विरुद्ध युद्ध किया जा रहा है, क्योंकि वे उत्पीड़ित हैं और अल्लाह को यक़ीनन उनकी सहायता की सामर्थ्य प्राप्त है।
>
> (क़ुरआन, सूरा-22 हज, आयत-39)

इस्लाम अपने माननेवालों से अपेक्षा करता है कि वे इस्लाम के पैग़ाम को जन-जन तक पहुँचाएँ, लेकिन इसके लिए भी वह ज़ोर-ज़बरदस्ती की अनुमति नहीं देता। क़ुरआन कहता है—

> "दीन के मामले में कोई ज़ोर-ज़बरदस्ती नहीं है।"
>
> (क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, आयत-256)

दूसरी जगह क़ुरआन अल्लाह के रसूल (सल्ल०) से कहता है कि वे इनकार करनेवालों से कह दें—

"तुम्हारे लिए तुम्हारा धर्म है और मेरे लिए मेरा धर्म।"
(क़ुरआन, सूरा-109 काफ़िरून, आयत-6)

(2) बन्धुत्व का विकास : इस्लाम मानवजाति की हुस्ने-अख़लाक़ी में विश्वास रखता है और क़ुरआन सभी मनुष्य को एक ही माता-पिता की सन्तान होने पर ज़ोर देता है। इस बात से किसी को इनकार नहीं है कि समस्त मानवजाति एक ही माता-पिता—आदम और हव्वा—की सन्तान है।

"लोगो, अपने रब से डरो, जिसने तुमको एक जान से पैदा किया और उसी जान से उसका जोड़ा बनाया और उन दोनों से बहुत से मर्द और औरत दुनिया में फैला दिए।"
(क़ुरआन, सूरा-4 निसा, आयत-1)

चूँकि समस्त मानवता एक माता-पिता की सन्तान है, इसलिए सभी मनुष्य आपस में भाई-भाई हैं। जिस प्रकार एक माता-पिता की सन्तानें आपस में समान होती हैं, हरेक के अधिकार और दायित्व दूसरे के प्रति समान होते हैं, उसी प्रकार इस्लाम वैश्विक भाईचारे की बात करता है। यह भाईचारा केवल व्यक्तियों के बीच ही नहीं है, बल्कि इस्लाम राज्यों और राष्ट्रों के बीच भी भाईचारे को बढ़ावा देता है। इसलिए इस्लाम की विदेश-नीति का दूसरा सिद्धान्त विश्व के देशों के बीच बन्धुत्व का विकास है।

एक ही माता-पिता की सन्तान होने से यह तथ्य भी स्पष्ट होता है कि सभी मनुष्य समान हैं—कोई बड़ा या छोटा, ऊँच या नीच नहीं। अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने हज के अवसर पर लाखों लोगों को सम्बोधित करते हुए कहा था—

"ऐ इनसानो, तुम्हारा प्रभु भी एक है और तुम्हारा पिता भी एक है।...किसी अरबी को किसी अजमी (ग़ैर-अरबी) पर कोई प्राथमिकता व श्रेष्ठता नहीं, न किसी अजमी को किसी अरबी पर, न गोरे को काले पर, न काले को गोरे पर, प्रमुखता अगर किसी की है, तो सिर्फ़

तक़वा और परहेज़गारी की है।"

अर्थात्, रंग, जाति, नस्ल, देश, क्षेत्र आदि किसी की श्रेष्ठता, प्रमुखता और प्राथमिकता के आधार नहीं हैं। बड़ाई का आधार अगर कोई है, तो ईमान एवं चरित्र है। इसलिए इस्लामी राज्यों की विदेश-नीति का अनिवार्य सिद्धान्त समानता है।

(3) न्याय और निष्पक्षता का विकास : इस्लाम मानवजाति के बीच न्याय और निष्पक्षता को बढ़ावा देता है। न्याय की स्थापना इस्लाम का मौलिक लक्ष्य है। किसी का पक्ष लिए या किसी से डरे बिना समस्त मानवजाति के साथ न्याय का मामला होना चाहिए। क़ुरआन इस सिद्धान्त पर ज़ोर देते हुए कहता है—

> "ऐ लोगो जो ईमान लाए हो! इनसाफ़ के ध्वजावाहक और अल्लाह के लिए गवाह बनो यद्यपि तुम्हारा इनसाफ़ और तुम्हारी गवाही खुद तुम्हारे अपने या तुम्हारे माँ-बाप और नातेदारों के विरुद्ध ही क्यों न पड़ती हो। मामले से सम्बन्ध रखनेवाला चाहे मालदार हो या ग़रीब, अल्लाह तुमसे अधिक उसका हितैषी है। अतः अपनी इच्छा के अनुपालन में न्याय से न हटो और अगर तुमने लगी-लिपटी बात कही या सच्चाई से पहलू बचाया तो जान रखो कि जो कुछ तुम करते हो अल्लाह को उसकी ख़बर है।"
>
> (क़ुरआन, सूरा-4 निसा, आयत-135)

न्याय और निष्पक्ष मामलों का यह नियम एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति के सम्बन्ध को ही नियन्त्रित नहीं करता है, बल्कि यह नियम राष्ट्रों-राज्यों के परस्पर सम्बन्ध पर भी लागू होता है। इसे स्पष्ट करते हुए क़ुरआन दूसरी जगह कहता है—

> "ऐ लोगो जो ईमान लाए हो, अल्लाह के हुक्म पर क़ायम रहने वाले और इनसाफ़ की गवाही देनेवाले बनो। किसी समुदाय की दुश्मनी तुमको इतना उत्तेजित न कर दे कि इनसाफ़ से फिर जाओ। इनसाफ़ करो, यह ईश-भक्ति और विनम्रता के अधिक अनुकूल

है।" (क़ुरआन, सूरा-5 माइदा, आयत-8)

अतः इस्लाम के अनुसार अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में न्याय का पालन अनिवार्य है। नफ़रत या दुश्मनी के कारण दूसरे राष्ट्र व राज्य के लोगों के साथ अन्याय की इस्लाम में कोई गुंजाइश नहीं है। बदक़िस्मती से आज की दुनिया की यह सबसे बड़ी समस्या है। प्रत्येक देश ने मित्र राष्ट्र और शत्रु राष्ट्र की दो श्रेणियों में दुनिया के देशों को बाँट लिया है और शत्रु राष्ट्र और वहाँ के लोगों के लिए न्याय की कोई कल्पना ही मौजूद नहीं है। स्थिति यहाँ तक है कि यदि किसी नागरिक ने किसी शत्रु राष्ट्र के किसी अच्छे काम की प्रशंसा कर दी, तो उसे देशद्रोही ठहरा दिया जाता है।

(4) **अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग का विकास :** इस्लामी राज्यों का एक महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त है भलाई, न्याय और शान्ति के कामों में सहयोग और बुराई, अन्याय और अशान्ति के कामों में असहयोग। क़ुरआन का स्पष्ट निर्देश है–

> "जो काम नेकी और ईशभक्ति के हैं उनमें सबको सहयोग दो और जो गुनाह और ज़्यादती के काम हैं उनमें किसी को सहयोग न दो।" (क़ुरआन, सूरा-5 माइदा, आयत-2)

क़ुरआन के इस आदेश का पालन करते हुए इस्लामी राज्य उन देशों के साथ सहयोग की नीति अपनाते हैं जो अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति एवं सुरक्षा के लिए काम कर रहे हों, बुराइयों, बीमारियों और ग़रीबी के विरुद्ध अभियान चला रहे हों, जो मानवता के कल्याण के लिए प्रयासरत हों। साथ ही वे उन देशों के साथ असहयोग की नीति अपनाते हैं जो शान्ति और सुरक्षा को बिगाड़ रहे हों, जो आक्रामक हों और जो मानवाधिकारों का हनन कर रहे हों।

एक इस्लामी राज्य के अन्य राज्यों के साथ सम्बन्ध को तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है–

(I) मुस्लिम देशों के साथ सम्बन्ध : सारे मुसलमान चाहे वे कहीं भी रहते हों, एक समाज हैं और आपस में भाई-भाई हैं। इस्लाम दुनिया के सारे

मुसलमानों के बीच एक ऐसा भाईचारा स्थापित करता है जो किसी भौगोलिक सीमा या अन्तर्राष्ट्रीय सीमाओं द्वारा तोड़ा नहीं जा सकता। इस्लाम वंश, रंग, भाषा, राष्ट्रीयता, क्षेत्रीयता आदि के आधार पर बनाए गए भेदभावों से ऊपर उठकर बहुत मज़बूत भाईचारे का निर्माण करता है और सारे भेदभावों से ऊपर उठकर सभी मुस्लिम महिलाओं और पुरुषों को एक परिवार बनाता है। क़ुरआन और हदीस में इसकी शिक्षाएँ मौजूद हैं।

क़ुरआन व हदीस की ये शिक्षाएँ व्यक्तिगत रूप से ही लोगों को भाईचारे के बन्धन में नहीं बाँधतीं, बल्कि अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर मुस्लिम देशों के बीच भी भाईचारे का निर्माण करती हैं। एक मुस्लिम देश के लिए ज़रूरी है कि वह दूसरे मुस्लिम देशों को अपना भाई समझे और हर तरह से उसकी मदद करे, चाहे मामला सुरक्षा का हो, विकास का हो, शिक्षा का हो या आर्थिक और सामाजिक मामले हों। मुस्लिम राज्यों को चाहिए कि वे शान्तिपूर्ण ढँग से रहें और अपने विवादों को भी शान्तिपूर्वक सुलझाएँ। अगर किसी कारण से दो मुस्लिम देशों के बीच विवाद बढ़ जाता है या युद्ध की स्थिति पैदा हो जाती है, तो अन्य मुस्लिम देशों का दायित्व है कि वे उन दोनों के बीच शान्ति स्थापित करने की कोशिश करें।

(II) सन्धिवाले ग़ैर-मुस्लिम राज्यों के साथ सम्बन्ध : एक इस्लामी राज्य का अगर किसी ग़ैर-मुस्लिम राज्य के साथ समझौता है, तो उसके सम्बन्ध उस समझौते की धाराओं के अनुसार ही चलेंगे। इस्लामी राज्य हर हाल में और हर क़ीमत पर समझौते की शर्तों का पालन करेंगे। अगर दूसरा पक्ष समझौते की शर्तों का पालन नहीं करता है और उनका खुला उल्लंघन करता है, तो इस्लामी राज्य को आज़ादी है कि वह दूसरे पक्ष को चेतावनी देकर समझौते को निरस्त कर दे। इस्लामी राज्य के लिए अपनी ओर से किसी भी हाल में समझौते की शर्तों के उल्लंघन की अनुमति नहीं है, क्योंकि यह वचन है और वचन को तोड़ना बहुत बड़ा गुनाह है और इसके लिए कड़ी सज़ाएँ निर्धारित हैं।

(III) सामान्य ग़ैर-मुस्लिम राज्यों के साथ सम्बन्ध : इस्लाम शान्ति का धर्म है और भाईचारे का आवाहक है, इसलिए एक इस्लामी राज्य का दूसरे

ग़ैर-मुस्लिम राज्यों के साथ सम्बन्ध का सामान्य सिद्धान्त यह है कि "सबके लिए दोस्ती और दुश्मनी किसी के लिए नहीं, सबके साथ शान्ति और युद्ध किसी के साथ नहीं।" ऐसे ग़ैर-मुस्लिम राज्य जिनका मुस्लिम राज्य के साथ कोई समझौता नहीं है, उनके लिए भी डरने की कोई बात नहीं है क्योंकि इस्लामी राज्यों की विदेश-नीति आक्रामक नहीं होती है, बल्कि इस्लामी राज्य की विदेश-नीति साझा दोस्ती और सहयोग की होती है। ये उन राज्यों के साथ सहयोग करते हैं जो शान्ति, न्याय और मानव-कल्याण के लिए काम करते हैं। क़ुरआन की शिक्षा है—

> "जो काम नेकी और ईश-भक्ति के हैं उनमें सबको सहयोग दो और जो गुनाह और ज़्यादती के काम हैं उनमें किसी को सहयोग न दो।" (क़ुरआन, सूरा-5 माइदा, आयत-2)

लेकिन अगर दूसरा देश नफ़रत और आक्रमण की नीति अपनाए, तो इस्लामी राज्यों को भी वैसा ही जवाब देने का अधिकार है। इस विषय पर क़ुरआन का दृष्टिकोण बिलकुल स्पष्ट है—

> "अतः जो तुम पर हाथ उठाए तुम भी उसी तरह उस पर हाथ उठाओ। अलबत्ता अल्लाह से डरते रहो और यह जान रखो कि अल्लाह उन्हीं लोगों के साथ है जो (उसकी सीमाओं को तोड़ने से) बचते हैं।" (क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, आयत-194)

वर्तमान समय के लोगों की समस्याएँ इस्लाम की शिक्षाओं का पालन करके ही हल हो सकती हैं। यह काम मुसलमानों का था कि वे इन शिक्षाओं का पालन करके दुनिया के सामने एक अनुसरणीय नमूना प्रस्तुत करते, लेकिन मुसलमानों ने इन शिक्षाओं को त्याग दिया और नेतृत्व का पद गँवा दिया और इसका नुक़सान सारी दुनिया को उठाना पड़ रहा है। मुसलमानों की वास्तविक शक्ति पवित्र क़ुरआन व हदीस के पालन में ही है। उसी के माध्यम से वे नेतृत्व का अपना खोया हुआ पद प्राप्त कर सकते हैं और तभी संसार का कल्याण हो सकता है।

मानव-सेवा का इस्लामी दृष्टिकोण

■ संकलित

इस जगत् में कुछ लोगों को हर प्रकार की सुख-सुविधाएँ प्राप्त हैं और कुछ लोग उनसे वंचित हैं। क़ुरआन उन सुख-सुविधा प्राप्त लोगों से माँग करता है कि वे सुविधा से वंचित लोगों की सेवा करें। उनके जीवन को सुखमय बनाने में उनको यथासम्भव सहायता प्रदान करें। अल्लाह ने जिस व्यक्ति को देखने के लिए आँख, सुनने के लिए कान, बोलने के लिए ज़बान, दौड़-धूप तथा परिश्रम करने के लिए शक्तिशाली हाथ-पैर, सोचने-समझने के लिए हृदय एवं मस्तिष्क और जीवन व्यतीत करने के लिए सुख-सामग्री प्रदान की है, उस व्यक्ति का यह कर्तव्य बनता है कि जो व्यक्ति लाचार व असहाय है, जिसको जीवन-साधन प्राप्त न हों और जो जीवन की दौड़-धूप में भाग लेने योग्य न हो, उसे असहाय न छोड़ दें कि वह दर-दर भटकता हुआ भिक्षा माँगे या आत्महत्या करने के लिए विवश हो जाए, बल्कि उसके जीविकोपार्जन हेतु उपयुक्त साधन और उसके सुख-चैन की सामग्री उपलब्ध कराए।

चूँकि इनसान को जो कुछ मिलता है, वह अल्लाह की ओर से मिलता है, अतः इनसान को उसी अल्लाह का आभारी होना चाहिए। उसका आभार प्रकट करने का एक तरीक़ा यह है कि उसके बन्दों के साथ सद्व्यवहार किया जाए और जो सेवा के पात्र हैं, उनकी यथासम्भव सेवा की जाए। अल्लाह तआला क़ुरआन में फ़रमाता है–

> "क्या हमने उसे दो आँखें और एक ज़बान और दो होंठ नहीं दिए और उसको (सत्य और असत्य के) दोनों मार्ग नहीं दिखाए? लेकिन वह घाटी पर नहीं चढ़ा। तुम जानते हो यह घाटी क्या है? गर्दन का छुड़ाना (ग़ुलाम आज़ाद कराना) या फ़ाक़े के दिन किसी निकटवर्ती अनाथ को या दुर्दशाग्रस्त मुहताज को खाना खिलाना। फिर वह उन लोगों में सम्मिलित हुआ जो ईमान लाए, जिन्होंने एक-दूसरे को सब्र की ताकीद की और (इनसानों के साथ) दया

करने की ताकीद की। यही लोग हैं जो (प्रलय के दिन अल्लाह के) दाईं ओर होंगे। और जिन्होंने हमारी 'आयतों' का इनकार किया वे बाईं ओरवाले हैं। वे चारों ओर से (नरक की) आग में बन्द कर दिए जाएँगे।" (क़ुरआन, सूरा-90 बलद, आयतें-8-20)

इस्लाम ने सृष्टि की सेवा को स्रष्टा की सेवा बताया है। अल्लाह के बन्दों की सहायता करना वास्तव में अल्लाह की सहायता करना है। इस्लाम अपने अनुयायियों को उम्मत (समुदाय) का शुभचिन्तक बनाने के साथ-साथ सम्पूर्ण मानवजाति का भी हमदर्द बनाता है। पक्षपात या तरफ़दारी आदमी को द्वेष, ईर्ष्या और दुश्मनी सिखाती है। जो व्यक्ति क़ौमी पक्षपात में ग्रस्त हो वह अपनी क़ौम के अतिरिक्त किसी अन्य क़ौम के साथ हमदर्दी और प्रेम का पक्षधर नहीं हो सकता। इस्लाम इसके विरुद्ध है। क़ुरआन मजीद ने दीन-दुखियों, अनाथों, मुहताजों, संसाधनों से असमर्थ व धन-दौलत से वंचित इनसानों की सेवा, खान-पान तथा उनके साथ सद्व्यवहार करने का आदेश दिया है। क़ुरआन में अल्लाह तआला फ़रमाता है–

"और अल्लाह के प्रेम में मुहताज और अनाथ और क़ैदी को खाना खिलाते हैं, (और उनसे कहते हैं कि) हम तुम्हें सिर्फ़ अल्लाह के लिए खिला रहे हैं, हम तुम से न कोई बदला चाहते हैं, न शुक्रिया।" (क़ुरआन, सूरा-76 दहर, आयतें-8,9)

मानवता उपकारक महाईशदूत हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) ने जन-सेवा, मानव-सेवा, दयाभाव, समानता, भाईचारा, सौहार्द, मुहब्बत और प्यार की ऐसी शिक्षा दी, जो अन्यत्र नहीं मिलती।

अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने कहा–

"दया करनेवालों पर दयावान (रहमान) दया करता है, अतः धरतीवालों पर दया करो, आकाशवाला तुम पर दया करेगा।"

(हदीस : तिरमिज़ी)

एक-दूसरी जगह हज़रत जरीर-बिन- अब्दुल्लाह (रज़ि॰) की रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने फ़रमाया–

"अल्लाह उस व्यक्ति पर दया नहीं करता, जो इनसानों पर दया न करे।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

इस्लाम सारे मनुष्यों को एक अल्लाह का बनाया हुआ, एक माँ-बाप की सन्तान, एक परिवार और कुटुम्ब बतलाता है। सबकी जान-माल, मान-सम्मान और प्रतिष्ठा को प्रतिष्ठित ठहराता है। सबको न्याय पाने का बराबर का अधिकारी बतलाता है। सबकी सेवा और सबके साथ सद्‌व्यवहार व परोपकार करने का आदेश देता है। हर इनसान आदम (अलैहि॰) की सन्तान होने के कारण हमारा भाई है और भाई के साथ हमारा जो व्यवहार होना चाहिए, वही व्यवहार व बरताव हमें समस्त मानवजाति से करना चाहिए। उन पर हम दया करें, दिल से उनका भला चाहें, उन्हें अच्छी-से-अच्छी सलाह दें, कठिनाइयों और परेशानियों में उनकी सहायता करें और उनका जो हम सेवा सत्कार कर सकते हैं, उससे पीछे न हटें।

जो व्यक्ति जितना अधिक बेसहारा, कमज़ोर, ग़रीब और परेशान है, उतना ही वह हमारी हमदर्दी, ध्यान और सहायता का पात्र है। हमारा परम कर्तव्य है कि हम उसे सहारा दें।

अबू-हुरैरा (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने इरशाद फ़रमाया—"विधवाओं और ग़रीबों के लिए भाग-दौड़ करनेवाला अल्लाह की राह में भाग-दौड़ करनेवाले की तरह है और मेरा ख़याल है, आप (सल्ल॰) ने यह भी कहा, वह रात को जागकर इबादत करनेवाले की तरह है, जो कभी नहीं थकता और उस व्यक्ति की तरह है जो सदैव रोज़े रखता है।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

आप (सल्ल॰) की शिक्षाओं से प्रेरणा लेकर आप (सल्ल॰) के सहाबा (रज़ि॰) ने जन-सेवा व मानव-सेवा का जो उदाहरण दुनिया के सामने पेश किया वह अद्वितीय है। ऐसे ही कुछ अनुपम उदाहरण आपके सम्मुख प्रस्तुत हैं—

जनता के सच्चे सेवक और इस्लामी जगत् के प्रथम ख़लीफ़ा हज़रत अबू-बक्र सिद्दीक़ (रज़ि॰) थे। ख़िलाफ़त उनके जीवन की सादगी और

व्यक्तिगत स्तर पर जन-सेवा को प्रभावित न कर सकी। जो सेवा-भाव ख़लीफ़ा बनने से पहले था, वह सेवा-भाव ख़लीफ़ा बनने के बाद भी बना रहा। ख़लीफ़ा होने से पहले वे एक पड़ोसी की बकरियाँ दूहा करते थे। ख़लीफ़ा बनने के बाद उस (पड़ोसी की) लड़की ने कहा कि हज़रत अबू-बक्र सिद्दीक़ (रज़ि॰) तो ख़लीफ़ा हो गए, अब हमारी बकरियाँ क्यों दुहेंगे? उन्होंने सुना तो कहा कि हम अब भी तुम्हारी बकरियाँ दुहा करेंगे, ख़िलाफ़त बकरियाँ दुहने में रुकावट नहीं बन सकती। यह है सच्ची मानव व जन-सेवा जो हज़रत अबू-बक्र सिद्दीक़ (रज़ि॰) में कूट-कूटकर भरी थी।

जन-सेवा की ललक उनके अन्दर ऐसी समा गई थी कि मदीना में एक अन्धी व बेसहारा बुढ़िया रहती थी। उसके घर का कामकाज करनेवाला कोई नहीं था। यह बात जब हज़रत अबू-बक्र सिद्दीक़ (रज़ि॰) को मालूम हुई तो वे रात के अन्तिम पहर में उस अन्धी बुढ़िया के घर जाते और फ़ज्र की नमाज़ से पहले उसके घर का सारा काम, यहाँ तक कि घर में झाड़ू लगाकर चले आते और उस अन्धी बुढ़िया को यह भी पता न चलता कि कौन है वह जनता का सच्चा हितैषी, जो निःस्वार्थ भाव से घर का सारा काम करके चला जाता है और किसी को पता भी नहीं चलता।

ये थे हज़रत अबू-बक्र सिद्दीक़ (रज़ि॰) के ईशभय, परलोक का डर, जनता की निःस्वार्थ सेवा, त्याग और उनकी न्यायशीलता के कुछ अनुपम उदाहरण।

हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) के दूसरे साथी और इस्लामी जगत् के दूसरे ख़लीफ़ा हज़रत उमर (रज़ि॰) थे। उनका जीवन अत्यन्त साफ़-सुथरा, निर्मल और निखरा हुआ था। वे बहुत ही सदाचारी और मानवता के प्रतीक थे। जनता की सेवा तथा उसकी भलाई व कल्याण के लिए वे हरदम तत्पर रहते थे। ईशभय व परलोक के भय से रोते-रोते उनकी दाढ़ी भीग जाती थी। कभी-कभी रोते समय उनको हिचकी भी बन्ध जाती थी। ख़लीफ़ा बनने के बाद वे रात को नगर तथा नगर के बाहर गश्त किया करते थे, ताकि राज्य की जनता आराम से सो सके और उन्हें कोई कष्ट न हो।

एक रात हज़रत उमर (रज़ि॰) गश्त पर निकले तो उन्होंने देखा कि एक

ख़ेमा है, उसके दरवाज़े पर एक व्यक्ति चिन्तित बैठा है और ख़ेमे में से एक औरत के रोने की आवाज़ आ रही है। वे उस ख़ेमे के पास गए और उस व्यक्ति से उस औरत के रोने का कारण पूछा। उसने झिड़ककर कहा कि तुम से क्या मतलब, अपना रास्ता देखो। उन्होंने दोबारा कहा कि भाई, मैं इसलिए पूछ रहा हूँ कि हो सके तो मैं तुम्हारी कोई सहायता कर सकूँ। उसने कहा कि मेरी बीवी को बच्चा पैदा होनेवाला है, उसी तकलीफ़ से रो रही है।

यह सुनकर वे घर गए और अपनी पत्नी को साथ ले आए और उस व्यक्ति से कहा कि मित्र यह मेरी पत्नी है, आज्ञा हो तो वह ख़ेमे के अन्दर जाए। उसने अनुमति दी, तो वे ख़ेमे के अन्दर चली गईं। थोड़ी देर के बाद अन्दर से आवाज़ आई, "अमीरुल-मोमिनीन! अपने मित्र को बधाई दीजिए, बेटा पैदा हुआ है।" उस व्यक्ति को जैसे ही मालूम हुआ कि वे ख़लीफ़ा हैं तो वह बहुत घबराया। अपने किए गए व्यवहार पर क्षमा माँगने लगा। परन्तु उन्होंने कहा कि कोई बात नहीं, जनता की सेवा तो हमारा कर्तव्य है। इतना कहकर वे अपनी पत्नी को लेकर घर चले आए।

इस्लामी जगत् के इतने बड़े शासक होने के बावजूद आश्चर्य होता है कि उनका जीवन कितना सरल व साधारण था। सरकारी कोष से केवल दो जोड़ी कपड़े लेते। एक जाड़े के मौसम में और दूसरा गर्मी के मौसम में। बाल-बच्चों के गुज़ारे के लिए औसत दर्जे का वज़ीफ़ा लेते थे। उनका खाना इतना सादा होता था कि कुछ लोग उनके साथ खाना पसन्द न करते थे। आपके शरीर पर जो कपड़ा था उसमें 14 पैबन्द लगे थे।

एक रात की घटना है कि इस्लामी जगत् के सच्चे सेवक, जनता के हितकारी हज़रत उमर (रज़ि॰) रात के समय गश्त पर निकले। रात बहुत अन्धेरी थी। उनके साथ उनका सेवक असलम भी था। रात में दूर से जलती हुई आग दिखाई दी। वे अपने दास के साथ वहाँ पहुँचे, तो क्या देखते हैं कि एक औरत है, उसके कई बच्चे हैं, जो रो रहे हैं और हाण्डी आग पर चढ़ी है। हज़रत उमर (रज़ि॰) निकट जाकर पूछते हैं कि ये बच्चे क्यों रो रहे हैं? उस औरत ने कहा कि हमारा क़ाफ़िला आगे बढ़ गया है इसलिए मैं यहीं पर रात काट रही हूँ। ये बच्चे भूख से रो रहे हैं।

हज़रत उमर (रज़ि०) ने फिर पूछा कि इस हाण्डी में क्या पका रही हो? उस औरत ने कहा कि इस हाण्डी में केवल पानी है, ताकि हाण्डी को देखकर बच्चे चुप हो जाएँ और सो जाएँ। यह सुनते ही जनता के सच्चे सेवक हज़रत उमर (रज़ि०) और असलम दोनों बैतुल-माल की ओर तेज़ी से चल पड़े। अनाज के गोदाम में पहुँचकर एक बोरी आटा और खाने-पीने का कुछ दूसरा सामान लिया और अपने दास असलम से कहा कि मेरी पीठ पर लाद दो। असलम ने कहा कि नहीं! मैं यह सामान उठाकर ले चलूँगा। हज़रत उमर (रज़ि०) ने कहा कि अरे असलम! क़ियामत के दिन भी मेरे गुनाहों को लादेगा? इसलिए यह सामान मेरी पीठ पर उठा दे। हज़रत उमर (रज़ि०) अपनी पीठ पर आटे की बोरी लादे हुए अपने सेवक असलम के साथ उस औरत और उसके बच्चे के पास पहुँच गए।

वहाँ पहुँचकर आटे की बोरी सामने रख दी और सालन को हाण्डी में डाल दिया। उन्होंने फ़रमाया कि ऐ अल्लाह की बन्दी, तुम हट जाओ, मैं पका देता हूँ। यह कहकर वे आग फूँकने लगे और आटा गूंथकर रोटी पकाने लगे। असलम कहते हैं कि मैं अपनी आँखों से देख रहा था कि धुँआ उनकी दाढ़ी से निकल रहा था। पकाने के बाद उन्होंने कहा कि बच्चों को खिलाओ, जब बच्चे अच्छी तरह खा चुके तो वे अपने सेवक के साथ वहाँ से चल दिए। औरत दुआएँ देने लगी, अल्लाह आपका भला करे। आप ही को अमीरुल-मोमिनीन होना चाहिए। उन्होंने कहा कि कोई बात नहीं, जब तुम सुबह अमीरुल-मोमिनीन के पास आओगी, तो वहाँ मुझे पाओगी। यह था दो शक्तिशाली राज्यों का विजय करनेवाला और सम्पूर्ण इस्लामी साम्राज्य का सम्राट।

क्या उनके जीवन-चरित्र की एक-एक घटना हमारी समस्याओं का समाधान करने के लिए काफ़ी नहीं है? हाँ; बिलकुल है। मगर स्वार्थपरता और ख़ुदगर्ज़ी ने हमारे दिल पर अधिकार जमा लिया है। अपने सुख के अतिरिक्त किसी के सुख की हमें कोई चिन्ता नहीं। हमारे अन्दर जन-सेवा, मानव-सेवा और परोपकार की भावना ख़त्म हो चुकी है। इनसान अवसरवादी बन चुका है, इसी लिए हमारा समाज पतन के रास्ते पर अग्रसर है।

मानवाधिकार का प्रवर्तक–इस्लाम

■ अहमदुल्लाह क़ासिमी

मानवाधिकार का विषय हर व्यक्ति की ज़बान पर है। यही कारण है कि आज राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर मानवाधिकारों के नाम पर बड़ी-बड़ी कॉन्फ्रेन्सों का आयोजन करके प्रस्ताव पारित किए जा रहे हैं। 1939 ई॰ के दूसरे विश्व-युद्ध में जब लाखों लोग मौत के घाट उतर गए, जंग का जुनून अपने चरम पर पहुँच गया और मानवता चीत्कार उठी, तो निष्ठुरता की इस काली रात से मौलिक अधिकारों की माँग करते हुए एक किरण फूटी, अन्ततः यह माँग पूरी हुई और 10 दिसम्बर 1948 ई॰ को संयुक्त राष्ट्र की आम सभा ने मानवाधिकारों से सम्बन्धित 30 धाराओं पर आधारित अन्तर्राष्ट्रीय घोषणा-पत्र तैयार करने और पारित करने में सफलता प्राप्त की। इस परिप्रेक्ष्य में 10 दिसम्बर को अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर मानवाधिकार दिवस के रूप में मनाया जाता है।

17वीं शताब्दी से पूर्व पश्चिमवासियों में मानवाधिकार की कोई अवधारणा पाई ही न जाती थी। 17वीं शताब्दी के बाद एक समय तक पश्चिमी दार्शनिकों ने अवश्य ही इस अवधारणा को पेश किया, परन्तु व्यावहारिक रूप से इस अवधारणा का सुबूत 18वीं शताब्दी के अन्त में अमेरिका और फ़्रांस के संविधानों में मिलता है। यह एक सर्वमान्य सत्य है कि मानवाधिकारों से दुनिया को सबसे पहले इस्लाम ने परिचित कराया। इस्लाम ने इनसानों को जो अधिकार दिए हैं वे अल्लाह की ओर से दिए हुए हैं। दुनिया की किसी विधानसभा और हुकूमत को उनमें संशोधन करने या उन्हें समाप्त करने का अधिकार नहीं है। अल्लाह तआला ने क़ुरआन में मानवाधिकारों का उल्लेख किया है और इस्लाम के पैग़म्बर हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) ने हज के अवसर पर जो अभिभाषण दिया था वह मानवाधिकारों के अन्तर्राष्ट्रीय घोषणा-पत्र की हैसियत रखता है।

इस्लाम ने मौलिक रूप से इनसानों को जो अधिकार दिए हैं उनमें जान-माल की रक्षा, मान-सम्मान की रक्षा, सन्तान की रक्षा, रोज़गार की रक्षा,

वैचारिक एवं धार्मिक स्वतंत्रता की रक्षा के अलावा क़ैदियों के अधिकार, शिक्षा का अधिकार, अच्छाई की ओर प्रेरित करने तथा बुराई से रोकने का अधिकार, रिश्तेदारों के आपसी अधिकार, माँ-बाप के अधिकार, पति-पत्नी के अधिकार, निर्बलों के अधिकार, बड़ों और छोटों के अधिकार आदि प्रमुख हैं।

इस्लाम ने युद्ध में मारे जानेवालों के शवों को कुचलने, उनके अँग-भँग करने से मना किया है। युद्ध की स्थिति में भी वृद्धों, स्त्रियों, बच्चों तथा घायलों को सुरक्षा प्रदान की। फ़सलों को नष्ट करने तथा इमारतों को गिराने से रोका।

प्राण की रक्षा के सम्बन्ध में पवित्र क़ुरआन में अल्लाह तआला कहता है—

> "जिसने किसी इनसान को क़त्ल के बदले या ज़मीन में बिगाड़ फैलाने के सिवा किसी और वजह से क़त्ल किया, उसने मानो तमाम इनसानों को क़त्ल कर दिया और जिसने किसी की जान बचाई उसने मानो सारे इनसानों को जीवन-दान किया।"
>
> (क़ुरआन, सूरा-5 माइदा, आयत-32)

मान-सम्मान की रक्षा के सम्बन्ध में अल्लाह का आदेश है—

"और निस्सन्देह हमने आदम की सन्तान को सम्मानित किया और हमने उनको थल और जल में (विभिन्न सवारियों पर) सवार किया और हमने उन्हें साफ़-सुथरी चीज़ों से आजीविका प्रदान की और हमने उन्हें बहुत से प्राणियों पर, जिन्हें हमने पैदा किया, श्रेष्ठता प्रदान की।"

(क़ुरआन, सूरा-17 बनी-इसराईल, आयत-70)

अल्लाह के रसूल हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) ने हज के अवसर पर फ़रमाया—

> "ऐ लोगो! जान लो कि तुम्हारा रब एक है और निस्सन्देह तुम्हारा बाप (आदम अलैहि॰) एक है। किसी अरबी (अरबवासी) को किसी अजमी (ग़ैर-अरबवासी) पर और किसी अजमी को अरबी

पर कोई श्रेष्ठता प्राप्त नहीं है और न किसी गोरे को किसी काले पर और न किसी काले को किसी गोरे पर कोई श्रेष्ठता प्राप्त है। (अगर श्रेष्ठता का कोई आधार है तो वह) सिवाय ईशपरायणता के (और कुछ नहीं है)।"

इस प्रकार इस्लाम ने हर प्रकार के भेदभाव, जाति-पाति, रँग-नस्ल, लिंग, भाषा, वंश-कुल और धन-दौलत आदि पर आधारित पक्षपातों को जड़ से उखाड़ दिया और इतिहास में पहली बार तमाम इनसानों को एक-दूसरे के समान ठहराया; बड़ाई और श्रेष्ठता का मापदण्ड केवल तक़वा (ईशपरायणता) को बताया।

यूँ तो दुनिया के अधिकांश देशों में मानवाधिकार से सम्बन्धित क़ानून पाए जाते हैं, परन्तु इस्लाम ने इनसानों को जो अधिकार दिए हैं उनमें ऐसी विशेषताएँ हैं कि इनसानों के बनाए हुए क़ानूनों से भिन्न हैं।

इस्लाम में मानवाधिकार की अवधारणा की सबसे बड़ी विशेषता, जो उसे अन्य धारणाओं से अलग करती है, इस सिद्धान्त पर आधारित होना है कि सर्वोच्च सत्ता का मालिक केवल अल्लाह तआला है। पवित्र क़ुरआन में कहा गया है—

"निर्णय का सारा अधिकार अल्लाह ही को है, वही सत्य बातें बयान करता है और वही उत्तम निर्णायक है।"

(क़ुरआन, सूरा-6 अनआम, आयत-57)

इस्लाम में मानवाधिकारों की दूसरी नुमायाँ ख़ूबी उनका हमेशा क़ायम रहना है। समय की माँग का बहाना लेकर उन्हें बदला नहीं जा सकता। इस्लाम में मानवाधिकारों की बुनियाद 'एहसान' पर रखी गई है। इस्लाम में मानवाधिकार ऐसे शुद्ध स्रोत से फूटते हैं जहाँ एक बन्दे को हर समय अल्लाह का भय बना रहता है। जहाँ हर पल, हर क्षण इनसान को यह आभास रहता है कि वह अल्लाह को देख रहा है या अल्लाह उसे देख रहा है। ज़ाहिर है कि इस स्थान पर खड़े होकर इनसान अधिकारों के हनन की कल्पना भी नहीं कर सकता।

इस्लाम ने जो अधिकार दिए हैं उनके बीच और दीने-फ़ितरत (स्वाभाविक धर्म अर्थात् इस्लाम) के बीच पूरी तरह एकरूपता, समानता और समरसता पाई जाती है। इस्लाम ने अधिकारों को यूँ ही आज़ाद नहीं छोड़ दिया कि चाहे कोई उनका निर्वाह करे या न करे, बल्कि उन्हें शरीअत का क़ानून बनाकर अनिवार्य कर दिया। उनको शिष्टाचार, नैतिकता और दीन (धर्म) का पाबन्द बनाया और फिर उनकी पामाली को मानवाधिकार का हनन ठहराया। यानी इस्लाम ने तमाम अधिकारों को ईश्वरीय आधार दिया और इस आधार को पूर्ण रूप से इस्लाम के स्वभाव के अनुरूप कर दिया।

इस्लाम ने इनसानों को जो अधिकार दिए हैं वे किसी वैचारिक संघर्ष, समय के उतार-चढ़ाव और आन्दोलनों के दबाव के नतीजे में नहीं बनाए गए, बल्कि इस्लाम में मानवाधिकारों के तमाम नियम एवं आदेश 1432 वर्ष पूर्व ईश-प्रकाशना के शुद्ध स्रोत से फूटे थे और इससे पहले कोई इनसान भी इन सिद्धान्तों से अवगत नहीं था। अलबत्ता इतिहास साक्षी है कि इस्लाम के अलावा जिन देशों ने मानवाधिकारों की रूप रेखा बनाई, वह विभिन्न आन्दोलनों और समय के उतार-चढ़ाव के दबाव में आकर बनाई।

उपर्युक्त विशिष्टताओं से परिपूर्ण इस्लाम द्वारा दिए गए मानवाधिकारों को यदि वैश्विक स्तर पर संवैधानिक मान्यता दी जाए, उसको लागू करते हुए व्यवहार में लाया जाए और उसके उल्लंघन को क़ानून का उल्लंघन ठहराया जाए तो निश्चित रूप से यह बात कही जा सकती है कि दुनिया से अत्याचार, शोषण एवं दमन को समाप्त किया जा सकेगा और सुख-शान्ति के वातावरण में ऐसे फूल खिलेंगे कि उसकी सुगन्ध से मानव-जीवन के समस्त क्षेत्र महक उठेंगे।

अन्य धर्मों के प्रति इस्लाम

■ **अबरार अहमद** (लाखेरीवाले)

जिस प्रकार इनसान की आँख का काम है—देखना, जब तक कि उसमें कोई ख़राबी न आ जाए, कान का काम है—सुनना, जब तक कि वह बहरेपन का शिकार न हो जाए। इसी प्रकार इनसान की प्रकृति का काम है—सीधे मार्ग की ओर चलना और उसकी तरफ़ उतनी ही तेज़ी से लपकना, जितनी तेज़ी से पानी नीचे गिरता है, जब तक कि वह किसी फ़साद का शिकार न हो जाए, जो उसकी लगाम अपने हाथ में ले ले और उसे ख़ैर की राह से मोड़ दे। इस्लाम एक प्राकृतिक धर्म है—

> "अतः (ऐ नबी और नबी के अनुयायियो!) एकाग्र होकर अपना रुख़ इस धर्म की दिशा में जमा दो, क़ायम हो जाओ उस प्रकृति पर जिस पर अल्लाह ने इनसानों को पैदा किया है, अल्लाह की बनाई हुई संरचना बदली नहीं जा सकती, यही बिलकुल सीधा और ठीक धर्म है, मगर ज़्यादातर लोग नहीं जानते।"
>
> (क़ुरआन, सूरा-30 रूम, आयत-30)

प्रकृति को बिगाड़नेवाली चीज़ें हैं—गिरे-पड़े माहौल की आदतें, रस्मो-रिवाज तथा लोगों का अपनी मनपसन्द चीज़ों की ओर झुकाव।

ये चीज़ें इनसान की प्रकृति के लिए बड़ी ख़तरनाक हैं तथा ये चीज़ें इनसानी प्रकृति में बीमारियाँ पैदा कर देती हैं। वास्तव में लोगों की जो मनपसन्द चीज़ें हैं, वे दुनिया के कुछ दिनों के जीवन की सामग्री हैं।

> "लोगों के लिए मनपसन्द चीज़ें—स्त्रियाँ, सन्तान, सोने-चाँदी के ढेर, चुने घोड़े, चौपाए और खेती की ज़मीनें, बड़ी लुभावनी बना दी गई हैं, किन्तु ये सब दुनिया के कुछ दिनों के जीवन की सामग्री है। वास्तव में जो अच्छा ठिकाना है वह तो अल्लाह के पास है।"
>
> (क़ुरआन, सूरा-3 आले-इमरान, आयत-14)

अतः एक जमाअत ऐसी अवश्य होनी चाहिए जो इन मनपसन्द चीज़ों,

बन्धनों और रस्मों का ज़ोर तोड़ दे। वह इनके ख़तरों से इनसानी प्रकृति को नजात दिलाने की कोशिश करे ताकि इनसानी प्रकृति में पवित्रता आ जाए और प्रकृति अपनी अस्ली ज़िम्मेदारी निभा सके—

> "(क़ायम हो जाओ इस बात पर) अल्लाह की ओर रुजू करते हुए और उससे डरो और नमाज़ क़ायम करो और न हो जाओ उन मुशरिकों में से जिन्होंने अपना-अपना धर्म अलग बना लिया है और गरोहों में बँट गए हैं। हर एक गरोह के पास जो कुछ है, उसी में वह मगन है।" (क़ुरआन, सूरा-30 रूम, आयतें-31,32)

उपर्युक्त आयतों से स्पष्ट है कि एक जमाअत ऐसी हो, जो अल्लाह की ओर रुजू करे, उससे डरे और उसके लिए नमाज़ क़ायम करे। ईमान लाना, तक़वा धारण करना और नमाज़ क़ायम करना यह बताते हैं कि इनसान अपनी सही प्रकृति पर चल रहा है तथा जो ऐसा न करें वे गुमराही में पड़े हुए हैं। अल्लाह ने इनसान को यद्यपि कमज़ोर पैदा किया है, लेकिन साथ-ही-साथ उसे अपनी सर्वोत्तम संरचना बनाया है।

इनसान बेहतरीन संरचना क्यों है? क्योंकि वह हक़ का दामन थाम लेता है और उसे क़ायम करने के लिए जिद्दो-जुहद करता है। लेकिन ज़्यादातर लोग अपनी ख़ाहिशों की पैरवी में लगे रहते हैं और ज़मीन ही से चिमटे रहते हैं। हालाँकि अल्लाह ने बता दिया है कि उन्हें किस-किस चीज़ से बचना चाहिए—

> "अल्लाह का यह तरीक़ा नहीं है कि लोगों को मार्ग पर लाने के बाद फिर गुमराही में डाल दे जब तक कि उन्हें साफ़-साफ़ बता न दे कि उन्हें किन चीज़ों से बचना चाहिए। वास्तव में अल्लाह को हर चीज़ का ज्ञान है।" (क़ुरआन, सूरा-9 तौबा, आयत-115)

> "अल्लाह तो तुम्हारी ओर दयालुता के साथ पलटना चाहता है, मगर जो लोग ख़ुद अपनी वासनाओं के पीछे चल रहे हैं, वे चाहते हैं कि तुम सीधे रास्ते से हटकर दूर निकल जाओ।"
> (क़ुरआन, सूरा-4 निसा, आयत-27)

"मैं अपनी निशानियों से उन लोगों की निगाहें फेर दूँगा जो नाहक़ ज़मीन में बड़े बनते हैं, वे चाहे कोई निशानी देख लें, कभी उस पर ईमान नहीं लाएँगे। अगर सीधा मार्ग उनके सामने आए तो उसे अपनाएँगे नहीं और अगर टेढ़ा मार्ग दिखाई दे, तो उस पर चल पड़ेंगे, इसलिए कि उन्होंने हमारी निशानियों को झुठलाया और उनसे बेपरवाही करते रहे।" (क़ुरआन, सूरा-7 आराफ़, आयत-146)

इस प्रकार जो लोग ईमान नहीं लाते हैं, वे गुमराह हो जाते हैं। यद्यपि इनसान अल्लाह तआला की सर्वोत्तम संरचना है, किन्तु जो लोग ईमान नहीं लाते, वे सारी चीज़ों से नीचे हो जाते हैं। वह कौन है जो सर्वोत्तम संरचना पर क़ायम रहता है? यह इन आयतों से स्पष्ट है—

"हमने इनसान को सर्वोत्तम संरचना के साथ पैदा किया, फिर उसे उलटा फेरकर सब नीचों-से-नीचा कर दिया सिवाय उनके जो ईमान लाए और अच्छे कर्म करते रहे कि उनके लिए कभी न समाप्त होनेवाला बदला है।" (क़ुरआन, सूरा-95 तीन, आयतें-4-6)

इस्लाम को दुनिया का सबसे असहिष्णु धर्म के रूप में प्रचारित किया गया है। यह भी प्रचारित किया गया कि इस्लाम तलवार के बल पर फैला। इस्लाम पर एक आक्षेप यह भी लगाया जाता है कि इस्लाम अलगाववाद की शिक्षा देता है। वह अपने अनुयायियों को दूसरे धर्म के लोगों से अलग-थलग रखना चाहता है। हालाँकि यह सत्य नहीं है। इस्लाम का अर्थ ही है—सलामती। अतः जो इस्लाम में दाख़िल हो गया, समझो वह सलामती की ओर आ गया। इस्लाम धर्म दूसरे धर्मों के प्रति कितना सहिष्णु है, इसका पता क़ुरआन की इस आयत से चलता है—

"दीन के मामले में कोई ज़ोर-ज़बरदस्ती नहीं है।"

(क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, आयत-256)

यहाँ एक महत्वपूर्ण घटना का उल्लेख आवश्यक है : जब हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) ने मक्का को फ़तह कर लिया और विजेता के रूप में मक्का में दाख़िल हुए, अगर प्यारे नबी (सल्ल॰) चाहते तो विरोधियों को उनकी करतूतों की सज़ाएँ दे सकते थे, लेकिन उन्होंने आम माफ़ी का एलान कर

दिया। यहाँ तक कि उस हबशी को भी माफ़ कर दिया, जिसने आप (सल्ल॰) के चचा हज़रत हमज़ा (रज़ि॰) को उहुद की जँग में शहीद कर दिया था और अपने सबसे बड़े दुश्मन अबू-सुफ़ियान और उनकी बीवी हिन्दा को भी माफ़ कर दिया। हिन्दा ही वे औरत थीं जिन्होंने हज़रत हमज़ा (रज़ि॰) का कलेजा अपने दाँतों से चबाया था।

इतिहास ने इससे पहले किसी ऐसे विजेता को नहीं देखा था जो दुश्मनों पर विजय हासिल करने के बाद उन्हें इस प्रकार माफ़ कर दे और उनके किए हुए ज़ुल्म व सितम की सज़ा न दे।

आप (सल्ल॰) के इस सद्व्यवहार का नतीजा यह हुआ कि क़ुरैश के सरदार अबू-सुफ़ियान (रज़ि॰) और उनकी बीवी हिन्दा (रज़ि॰) ने इस्लाम क़बूल कर लिया।

इस्लाम दूसरे धर्मों का सम्मान करने का हुक्म देता है। किसी को सिर्फ़ इस बात पर भला-बुरा नहीं कहा जा सकता कि वह हमारे धर्म का नहीं है, साथ ही उनके माबूदों को भी भला-बुरा नहीं कहा जा सकता।

> "और (ऐ मुसलमानो!) ये लोग अल्लाह के सिवा जिनको पुकारते हैं, उन्हें अपशब्द न कहो।"
>
> (क़ुरआन, सूरा-6 अनआम, आयत-108)

प्रत्येक मनुष्य इस बात के लिए स्वतन्त्र है कि वह जिस धर्म को मानना चाहता हो माने। किसी भी इनसान को ईमान लाने पर मजबूर नहीं किया जा सकता है—

> "अगर तेरे रब की इच्छा यह होती (कि ज़मीन में सब ईमान वाले और आज्ञाकारी ही हों) तो ज़मीन के सारे वासी ईमान ले आए होते। फिर क्या तू लोगों को मजबूर करेगा कि वे ईमानवाले हो जाएँ।" (क़ुरआन, सूरा-10 यूनुस, आयत-99)

यद्यपि अल्लाह ने उन लोगों से लड़ने का ईमानवालों को आदेश दिया है, जो ईमानवालों से लड़ें, उन्हें उनके घरों से निकाल दें और धरती पर उपद्रव फैलाएँ, परन्तु साथ ही अल्लाह ने ज़्यादती से मना फ़रमाया है—

"तुम उनसे लड़ते रहो यहाँ तक कि उपद्रव बाक़ी न रहे और दीन अल्लाह के लिए हो जाए। फिर अगर वे बाज़ आ जाएँ तो समझ लो कि अत्याचारियों के अलावा और किसी पर हाथ नहीं उठाया जा सकता।" (क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, आयत-193)

"और तुम अल्लाह के मार्ग में उन लोगों से लड़ो, जो तुमसे लड़ते हैं, लेकिन ज़्यादती न करो कि अल्लाह ज़्यादती करनेवालों को पसन्द नहीं करता।" (क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, आयत-190)

यदि लोग बाज़ आ जाएँ और तौबा कर लें, तो उन्हें अवश्य ही माफ़ कर देना चाहिए।

"फिर अगर वे बाज़ आ जाएँ तो जान लो अल्लाह क्षमा करने वाला और दयावान है।" (क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, आयत-192)

"मगर जो लोग पलट आएँ इससे पहले कि तुम उन पर क़ाबू पाओ—तुम्हें मालूम होना चाहिए कि अल्लाह माफ़ करनेवाला और दयावान है।" (क़ुरआन, सूरा-5 माइदा, आयत-34)

"अतः अगर ये तौबा कर लें और नमाज़ क़ायम करें और ज़कात दें तो तुम्हारे धर्म सम्बन्धी भाई हैं।"

(क़ुरआन, सूरा-9 तौबा, आयत-11)

यदि कुछ लोग ईमानवालों को भला-बुरा कहते हैं, तो उनकी बात पर ध्यान न देकर धैर्य से काम लेना चाहिए तथा ऐसे लोगों से दूर हो जाना चाहिए।

"और जो बातें लोग बना रहे हैं, उन पर धैर्य से काम लो और सज्जनता के साथ उनसे अलग हो जाओ।"

(क़ुरआन, सूरा-73 मुज़्ज़म्मिल, आयत-10)

"(ऐ नबी), जो बातें ये लोग बना रहे हैं, उन्हें हम ख़ूब जानते हैं और तुम्हारा काम उनसे बलपूर्वक बात मनवाना नहीं है। बस तुम इस क़ुरआन के द्वारा हर उस व्यक्ति को नसीहत करो जो मेरी चेतावनी से डरे।" (क़ुरआन, सूरा-50 क़ाफ़, आयत-45)

क़ुरआन अल्लाह की तरफ़ से एक नसीहत है, जिसकी मर्ज़ी हो वह उसे माने और जो न माने तो वह ऐसा करने के लिए स्वतन्त्र है—

"यह एक नसीहत है अब जो चाहे अपने रब की ओर जाने का मार्ग अपना ले।" (क़ुरआन, सूरा-76 दह्र, आयत-29)

यदि किसी ईमानवाले का पड़ोसी कोई ग़ैर-मुस्लिम है, तो उसके साथ सद्व्यवहार करने का अल्लाह ने आदेश दिया है; क्योंकि पड़ोसी घर के पास रहता है इसलिए वह दूसरे लोगों के मुक़ाबले में बेहतर तौर पर सुख-दुख का साथी बन सकता है। अतः पड़ोसी चाहे यहूदी ही हो, उसके साथ अच्छा बरताव करना आवश्यक है बल्कि यूँ कहें कि अनिवार्य है—क्योंकि अल्लाह ने नातेदार पड़ोसियों और अनजान पड़ोसियों के साथ नेकी करने का हुक्म दिया है। (क़ुरआन, सूरा-4 निसा, आयत-36)

ग़ैर-मुस्लिम से विवाद से बचना चाहिए और यदि इसकी नौबत आ जाए तो उत्तम ढँग से विवाद करना चाहिए तथा उन्हें ऐसी बात की तरफ़ बुलाना चाहिए जो हम में और उनमें एक-सी हों।

"ऐ नबी, अपने रब के मार्ग की ओर बुलाओ तत्वदर्शिता और सदुपदेश के साथ, और उन लोगों से विवाद करो ऐसे ढँग से जो उत्तम हो।" (क़ुरआन, सूरा-16 नह्ल, आयत-125)

"(ऐ नबी) कहो, ऐ किताबवालो! आओ एक ऐसी बात की ओर जो हमारे और तुम्हारे बीच समान है।"
(क़ुरआन, सूरा-3 आले-इमरान, आयत-64)

अल्लाह ने अपने प्यारे नबी (सल्ल॰) को लोगों के प्रति नरमी से पेश आने का हुक्म दिया, क्योंकि लोगों को रास्ते पर लाने का काम अल्लाह का है, नबी का नहीं।

"ऐ नबी, नर्मी और माफ़ करने की नीति अपनाओ, भलाई के लिए कहते जाओ और जाहिलों से न उलझो।"
(क़ुरआन, सूरा-7 आराफ़, आयत-199)

"ऐ नबी, लोगों को रास्ते पर ला देने की ज़िम्मेदारी तुम पर नहीं

है। रास्ते पर तो अल्लाह ही जिसे चाहता है, चलाता है।"

(क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, आयत-272)

धरती की व्यवस्था को बिगाड़ने से बचाने के लिए अल्लाह एक गरोह को दूसरे गरोह से हटाता रहता है, ताकि उपद्रव न फैले—

"अगर अल्लाह लोगों को एक-दूसरे के द्वारा हटाता न रहे तो ख़ानक़ाहें और गिरजे और उपासना गृह और मस्जिदें जिनमें अल्लाह का अधिकता से नाम लिया जाता है, सब ढा दी जाएँ।"

(क़ुरआन, सूरा-22 हज, आयत-40)

इस आयत से सिद्ध होता है कि इस्लाम धर्म कितना सहिष्णु है। इस आयत में केवल मस्जिद ही नहीं बल्कि गिरजा आदि को गिराने से भी रोके जाने का उल्लेख है। देखा, अन्य धर्मों के प्रति इस्लाम का रवैया कितना नरम है!

अल्लाह ने युद्ध का आदेश सिर्फ़ उन लोगों के लिए दिया है, जो धरती में फ़साद फैलाते फिरते हैं, उपद्रव मचाते हैं, लोगों को उनके घरों से निकाल देते हैं। अन्य लोगों के प्रति चाहे वे किसी भी धर्म के हों, नेकी का बरताव करने का अल्लाह का हुक्म है—

"अल्लाह तुम्हें इस बात से नहीं रोकता कि तुम उन लोगों के साथ नेकी और इनसाफ़ का बरताव करो, जिन्होंने धर्म के मामले में तुम से युद्ध नहीं किया है और तुम्हें तुम्हारे घरों से नहीं निकाला है।" (क़ुरआन, सूरा-60 मुम्तहिना, आयत-8)

अतः इस्लाम दूसरे धर्मों के प्रति नरम रवैया रखता है, यह एक पूर्ण सहिष्णु धर्म है। इसके फैलने का प्रमुख कारण है कि अल्लाह ने क़ुरआन में जो आदेश दिए हैं, उनपर ठीक-ठीक अमल किया गया। किसी को इस्लाम क़बूल करने के लिए बाध्य नहीं किया गया। लोगों ने इस्लाम के अनुयायियों के सद्व्यवहार को देखकर इस्लाम धर्म क़बूल किया। इस्लाम धर्म प्यार से फैला, नफ़रत से नहीं। यदि किसी को मजबूरी में धर्म क़बूल करवा लिया जाए तो वह फिर से अपने पुराने धर्म की ओर लौट आता है, परन्तु इस्लाम में ऐसा नहीं हुआ। इस्लाम के अनुयायियों ने नर्मी का व्यवहार करके इस्लाम धर्म को फैलाया।

न्याय की जीती-जागती मिसालें

■ संकलित

समाज की सुरक्षा व हित के लिए न्याय का व्यवहार नितान्त आवश्यक है। न्याय से वंचित समाज प्रगति एवं उन्नति के मार्ग पर न चल सकता है और न कभी फल-फूल ही सकता है। न्याय मानवजाति का वह अधिकार है, जिसको न धन-दौलत से ख़रीदा जा सकता है और न बलपूर्वक छीना जा सकता है। आप देख लीजिए कि जिस समाज ने धन, शक्ति और वैभव के बल पर न्याय को दबाना चाहा है, उसको इतिहास ने माफ़ नहीं किया और न भविष्य में ही क्षमा करेगा। एक दिन ऐसा अवश्य आएगा, जब न्याय का गला घोंटनेवालों का गला घोटा जाएगा। दुखी मानवता को शक्ति से दबानेवालों को स्वयं ही दुखों की चक्की में पिसना पड़ेगा।

इस संसार का यह अटल नियम है, जिसको कोई व्यक्ति अपनी मूर्खता से बदल नहीं सकता। वे लोग बहुत शीघ्र अपने-आपको भुला देते हैं, जो न्याय की कुर्सियों पर बैठते हैं कि वे कितनी बड़ी परीक्षा दे रहे हैं, जिनके एक-एक क्षण और एक-एक अक्षर का मानवता के न्यायग्रह में हिसाब किया जाएगा। अगर इससे बचकर निकल गए, तो इतिहास के पन्नों को हिसाब देना होगा। अगर इससे भी बचकर निकल गए, तो अल्लाह और ईश्वर की अदालत से किसी भी प्रकार से बचकर नहीं निकल सकेंगे।

इस सिलसिले में इस्लामी शिक्षाओं ने किसी का पक्ष नहीं लिया है, बल्कि साफ़-साफ़ उन लोगों को होशियार रहने का आदेश दे दिया है, जो न्यायाधीश की कुर्सियों पर विराजमान हैं। अन्याय करनेवालों को कठोर-से-कठोर दण्ड की चेतावनी दी गई है, इसी लिए इस्लामी न्याय इतिहास के पन्नों में उदाहरण बन गया। न्याय के सिलसिले में अल्लाह कहता है—

> "ऐ लोगो जो ईमान लाए हो, न्याय व इनसाफ़ के ध्वजावाहक और अल्लाह के लिए गवाह बनो, यद्यपि तुम्हारा इनसाफ़ और तुम्हारी गवाही स्वयं तुम्हारे अपने या तुम्हारे माँ-बाप और नातेदारों के विरुद्ध ही क्यों न पड़ती हो। मामले से सम्बन्ध रखनेवाला पक्ष

चाहे धनवान हो या निर्धन, अल्लाह तुमसे अधिक उनका हितैषी है। अतः अपनी इच्छा के अनुपालन में न्याय से न हटो और अगर तुमने लगी-लिपटी बात कही या सच्चाई से पहलू बचाया तो जान रखो कि जो कुछ तुम करते हो अल्लाह को उसकी ख़बर है।"

(क़ुरआन, सूरा-4 निसा, आयत-135)

एक इनसान के लिए न्याय का मार्ग अपनाना कुछ मुश्किल नहीं है मगर उसकी आज़माइश उस समय हो जाती है, जब कोई समस्या स्वयं उसके या उसके परिवार के सामने आ जाती है। ऐसी दशा में देखा गया है कि लोगों के पाँव डगमगा जाते हैं। यही वह अवसर होता है जब उसके न्याय व इनसाफ़ की पोल खुल जाती है। ऐसी स्थिति में अल्लाह फ़रमाता है–

"ऐ लोगो जो ईमान लाए हो, अल्लाह के लिए औचित्य पर क़ायम रहनेवाले और इनसाफ़ की गवाही देनेवाले बनो। किसी गरोह की दुश्मनी तुमको इतना उत्तेजित न कर दे कि इनसाफ़ (न्याय) से फिर जाओ। इनसाफ़ करो, यह ईशभक्ति और विनम्रता से अधिक अनुकूल है। अल्लाह से डरकर काम करते रहो, जो कुछ तुम करते हो अल्लाह उसे पूरी तरह जानता है।"

(क़ुरआन, सूरा-5 माइदा, आयत-8)

एक अवसर पर ईशदूत हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) ने अपनी चहेती बेटी फ़ातिमा को भी दण्ड देने की बात कर दी थी।

घटना इस तरह है कि मक्का में एक औरत रहती थी, जिसका सम्बन्ध मख़ज़ूम क़बीले के एक प्रतिष्ठित परिवार से था। एक बार उसने चोरी की और पकड़ी गई। परिणामस्वरूप उसे उसका हाथ काटने की सज़ा मिली। उस औरत का नाम फ़ातिमा था। ईशदूत मुहम्मद (सल्ल॰) की बेटी का नाम भी फ़ातिमा था। इस्लाम से पूर्व अरब में प्रतिष्ठित लोगों के लिए जो क़ानून था, उससे भिन्न क़ानून उन लोगों के लिए था, जो कमज़ोर वर्ग के थे। उनमें से एक ऊँचे घराने की अपराधी औरत को अन्ततः सज़ा मिलकर रहेगी, इस बात से बनी-मख़ज़ूम क़बीले के लोग ख़ुश न थे। (यह चोरी की घटना उस समय की है, जब अरब के लोग क़बीले-के-क़बीले इस्लाम धर्म स्वीकार कर

रहे थे और बहुत-से लोग इस्लाम क़बूल कर चुके थे) वे आपस में कहने लगे, "यह कैसे हो सकता है? क्या उस औरत को बचाने के लिए कोई राह नहीं निकल सकती।" चिन्ता बढ़ती गई। प्रश्न यह था कि ईशदूत मुहम्मद (सल्ल॰) को इस बात पर कैसे सहमत किया जाए कि फ़ातिमा (अपराधी औरत) को दण्ड से बचाया जा सके। वे भली-भाँति जानते थे कि अल्लाह की निर्धारित की हुई सज़ा में नर्मी बरतने के लिए आप (सल्ल॰) से कहना व्यर्थ होगा।

अतः क़बीला बनी-मख़ज़ूम के लोग इस निर्णय पर पहुँचे कि इस कार्य में उसामा-बिन-ज़ैद (रज़ि॰) की सहायता ली जाए। उसामा (रज़ि॰) ईशदूत मुहम्मद (सल्ल॰) के मुँहबोले बेटे ज़ैद-बिन-हारिसा (रज़ि॰) के बेटे थे। आप (सल्ल॰) उसामा से बहुत प्यार करते थे। बनी-मख़ज़ूम के लोग उसामा (रज़ि॰) के पास गए और उस अपराधी औरत (फ़ातिमा) के बारे में पूरी बात बताई। उन लोगों की पूरी बात सुन लेने के बाद उसामा (रज़ि॰) ने कहा कि मैं अल्लाह के रसूल मुहम्मद (सल्ल॰) को इस बात पर राज़ी करने की पूरी कोशिश करूँगा कि आप (सल्ल॰) फ़ातिमा के दण्ड के मामले में नर्मी बरतें।

उसामा (रज़ि॰) अवसर की प्रतीक्षा करने लगे, यहाँ तक कि उन्होंने रसूल (सल्ल॰) को अकेले में पा लिया और अपनी बात कहनी शुरू की। उसामा (रज़ि॰) जितनी शीघ्रता से बात कर सकते थे, कह रहे थे। तभी नबी (सल्ल॰) ने उनकी तरफ़ से मुँह फेर लिया और उसामा (रज़ि॰) समझ गए कि रसूल (सल्ल॰) उनकी बातों से अप्रसन्न हो गए हैं।

शाम को नमाज़ के बाद ईशदूत हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) लोगों को सम्बोधित करने के लिए खड़े हुए और फ़रमाया—

"अल्लाह महान है। तुमसे पहले की कई क़ौमों का पतन हुआ और वे कमज़ोर हुईं और अन्ततः विनष्ट होकर रहीं, केवल इसलिए कि उनमें जब उच्च वर्ग का कोई प्रतिष्ठित व कुलीन व्यक्ति अपराध करता तो वे उसे छोड़ देते, और जब कमज़ोर वर्ग का कोई निर्धन व्यक्ति वही अपराध करता तो उसे दण्ड देते। मैं क़सम

खाता हूँ उसकी, जिसके हाथ में मेरी जान है कि यदि मेरी चहेती बेटी फ़ातिमा भी चोरी करती, तो मैं उसका भी हाथ काटने का आदेश देता।"

अगर आप इस्लामी इतिहास पर एक उचटती हुई नज़र भी डाल दें, तो आपका सिर गर्व से ऊँचा उठ जाएगा। विश्व में सम्भवतः कोई ऐसा राज्य न होगा, जिसके संविधान में न्याय और इनसाफ़ के सम्बन्ध में विशेष धाराएँ मौजूद न हों। किन्तु विश्व के किसी राज्य के पास ऐसा संविधान मौजूद नहीं है, जिसकी पीठ पर ईश्वर के समक्ष उत्तरदायी होने का विश्वास मौजूद हो। यह विशेषता केवल इस्लामी संविधान को प्राप्त है। यही कारण है कि आज विश्व के हर राज्य में न्याय और इनसाफ़ की दुर्दशा हो रही है और सबसे अधिक न्याय की दुर्दशा शासक वर्ग के हाथों हो रही है। जो न्याय को स्थापित करने का उत्तरदायी है, वही न्याय के नियमों को अपने लाभ और उद्देश्यों के अनुसार उपयोग कर रहा है और न्याय के नाम पर अपने विरोधियों पर खुल्लम-खुल्ला अत्याचार कर रहा है। शासक वर्ग ने ऐसे नियम बना रखे हैं, जिनके द्वारा जिसको चाहते हैं न्यायालय में मुक़दमा चलाए बिना जेल में डाल देते हैं और उसे स्वतंत्रता के अधिकार से वंचित कर देते हैं, जो अन्याय है। आमतौर पर इस तरह की ख़बरें मीडिया के ज़रिए सुनने में आती रहती हैं।

इस्लामी शासन में सबसे सरल काम न्याय प्राप्त करना था। वह भी किसी ख़र्च के बिना लोग सच्चा न्याय प्राप्त कर लेते थे। इसका कारण यह था कि इस्लामी शासन का नियम मुनष्यों का बनाया हुआ न था, ईश्वरीय नियम था। इसलिए शासक व प्रजा दोनों के दिलों में उसका सच्चा सम्मान था। उसकी अवज्ञा को शासक व प्रजा दोनों लोक-परलोक के विनाश-तुल्य समझते थे। इस विधान की पीठ पर ईश्वर और ईश-सन्देश की ताड़नाएँ और चेतावनियाँ भी मौजूद थीं, जिन पर उनका सच्चा विश्वास था और वे उनकी अवहेलना का साहस नहीं कर सकते थे। रसूल (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

"क़ियामत (प्रलय) के दिन न्याय करनेवाले न्यायाधिकारी (क़ाज़ी) के समक्ष भी ऐसा ईश्वर का भय होगा कि वह चाहेगा कि

काश! उसने एक खजूर के सम्बन्ध में भी दो व्यक्तियों के बीच निर्णय न किया होता।"

हज़रत अबू-बक्र सिद्दीक़ (रज़ि॰) जब इस्लामी शासन के पहले ख़लीफ़ा (शासनाध्यक्ष) हुए तो न्याय व इनसाफ़ सम्बन्धी एवं महाईशदूत हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) की शिक्षा और आदेश उनके सामने थे। इसलिए उन्होंने मुसलमानों के समूह में जो प्रथम भाषण दिया, उसमें अपने शासन की नीति बयान करते हुए घोषणा की–

> "तुम्हारे बीच जो निर्बल है, वह मेरे निकट बलवान है, यहाँ तक कि उसका छीना हुआ अधिकार उसको पुनः वापस दिला दूँ और तुम्हारे बीच जो बलवान है, वह मेरे निकट निर्बल है, यहाँ तक कि मैं उससे उस अधिकार को प्राप्त कर लूँ, जो उसने हनन कर रखा है।"

इसी प्रकार इस्लामी राज्य के दूसरे ख़लीफ़ा (शासनाध्यक्ष) हज़रत उमर फ़ारूक़ (रज़ि॰) हुए, तो उन्होंने अपने सम्बोधन में फ़रमाया–

> "मैं किसी व्यक्ति को इसका अवसर न दूँगा कि वह किसी का अधिकार छीने या किसी पर कोई अत्याचार करे। जो व्यक्ति ऐसा करेगा उसका एक गाल मैं धरती पर रखूँगा और उसके दूसरे गाल पर अपना पाँव रखूँगा, यहाँ तक कि वह सत्य के सामने झुक जाए।"

हज़रत उमर फ़ारूक़ (रज़ि॰) ने ऐसे नियम बना दिए थे कि ग़रीब-से-ग़रीब आदमी को न्याय प्राप्त करने में कोई कठिनाई न हो। न्यायालय में मुक़दमा पेश करने से लेकर फ़ैसला पाने तक किसी प्रकार का व्यय नहीं करना पड़ता था। निर्धन-से-निर्धन व्यक्ति क़ाज़ी (न्यायाधीश) के पास पहुँच कर मुक़दमा दाख़िल कर देता और उसे आसानी से न्याय मिल जाता। न्यायाधीशों को आदेश था कि कोई निर्धन व असहाय व्यक्ति वादी बनकर आए तो उसके साथ नम्रता व सहिष्णुता का व्यवहार किया जाए, ताकि वह अपना वाद उपस्थित करने में किसी प्रकार का दबाव न अनुभव करे।

न्याय व इनसाफ़ से सम्बन्धित एक दूसरा उदाहरण है कि एक बार इस्लामी राज्य के ख़लीफ़ा (शासनाध्यक्ष) हज़रत उमर फ़ारूक़ (रज़ि॰) के पुत्र अब्दुर्रहमान ने मिस्र में शराब पी। होश आया तो स्वयं ही मिस्र के शासक हज़रत अम्र-बिन-आस (रज़ि॰) की सेवा में उपस्थित हुए और अपने अभियोग को स्वीकार करके प्रार्थना की कि उन्हें शराब पीने की सज़ा दी जाए। हज़रत अम्र-बिन-आस (रज़ि॰) ने डाँट-डपटकर टाल देना चाहा, किन्तु अब्दुर्रहमान जानते थे कि मिस्र के शासक ने उनको क्षमा भी कर दिया तो क्या हुआ, क़ियामत (प्रलय) के दिन अल्लाह क्षमा न करेगा और वे परलोक के अपमान से बच न सकेंगे। इसलिए उन्होंने आग्रहपूर्वक कहा कि उनको सज़ा दी जाए, वरना वे मदीना जाकर इस्लामी राज्य के शासनाध्यक्ष हज़रत उमर (रज़ि॰) से शिकायत करेंगे। उनके इस आग्रह पर मिस्र के शासक ने अपने आवास के प्रांगण में उनको सज़ा दी।

इस घटना की सूचना जब हज़रत उमर (रज़ि॰) को मिली तो उन्होंने मिस्र के शासक को ताड़नापूर्वक यह पत्र लिखा—

"ऐ इब्ने-आस ! मुझको तुम्हारी धृष्टता और प्रतिज्ञा-भँग पर आश्चर्य है। मेरे निकट तुम मिस्र की गवर्नरी के पद से हटा दिए जाने योग्य हो। तुमने अब्दुर्रहमान को अपने आवास के प्रांगण में सज़ा दी और मकान के अन्दर ही उसका सिर मूण्डा। यद्यपि तुम्हें भली-भाँति मालूम है कि इस प्रकार का पक्षपात मेरे नियम के विरुद्ध है। अब्दुर्रहमान तुम्हारी प्रजा में से एक था। तुम्हें चाहिए था कि जिस प्रकार तुम दूसरों के साथ व्यवहार करते हो, उसी प्रकार उसके साथ भी करते। किन्तु तुमने उसके साथ जो व्यवहार किया है, इस विचार से कि वह इस्लामी राज्य के शासनाध्यक्ष का बेटा है। यद्यपि तुम जानते हो कि मैं न्याय के सम्बन्ध में किसी के साथ पक्षपात से काम नहीं लेता। इसलिए तुमको आदेश देता हूँ कि मेरा पत्र पाते ही अब्दुर्रहमान को मेरे पास भेज दो, ताकि मैं उसको उसके किए का मज़ा चखाऊँ।" एक कथनानुसार हज़रत उमर फ़ारूक़ (रज़ि॰) ने अपने पुत्र अब्दुर्रहमान को जनता के समूह के समक्ष पुनः सज़ा दी।

क्या इस्लामी राज्य और इस्लामी समाज के अतिरिक्त भी सत्यप्रियता

और न्यायशीलता के ऐसे विचित्र दृश्य देखे जा सकते हैं? दोषी दोष छिपाता है और अपने-आपको बचाने की भरपूर चेष्टा करता है, किन्तु वास्तविक इस्लामी समाज का एक दोषी स्वयं अपने को सज़ा प्राप्त करने के लिए उपस्थित करता है और उसके साथ नरमी की जाती है, तो वह शासक को धमकी देता है कि मुझे सज़ा दो अन्यथा तुम्हारी शिकायत इस्लामी राज्य के शासनाध्यक्ष से करूँगा।

भारतवर्ष में मुसलमानों ने अपना साम्राज्य स्थापित किया तो उनका उद्देश्य अंग्रेज़ों की तरह भारत को अपना उपनिवेश बनाकर इसे लूटना फिर यहाँ कि धन-दौलत से अपने देश को भरना कदापि नहीं था। वे यहाँ आए तो भारत को ही सदैव के लिए अपना देश बना लिया और यहाँ की दौलत यहाँ से कहीं और नहीं जाने दी। उन्होंने भारत को ख़ुशहाली और अमन-चैन, शान्ति का देश बनाने के लिए हर सम्भव उपाय किए और न्याय तथा इनसाफ़ की बुनियादों पर हुकूमत क़ायम करने और चलाने की भरपूर कोशिश की। भारत को एक महान देश बनाने के लिए उन्होंने उत्तरोत्तर संघर्ष किया और इसे अखण्ड राष्ट्र का व्यावहारिक रूप देकर छोटे-छोटे राज्यों को एक लड़ी में गूंथकर भारत को एक महान एवं शक्तिशाली देश बना दिया।

इनसाफ़ और न्यायप्रियता मुस्लिम बादशाहों का विशिष्ट गुण रहा है। जनकल्याण और न्यायशीलता की इस्लामी शिक्षाएँ उनका लक्ष्य थीं। हज़रत बख़्तियार काकी (रह०) की पुस्तक वाणी संग्रह के ''फ़वाएदुस्सालिकीन'' में है कि ''इलतुतमिश'' की ओर से आम अनुमति थी कि जो लोग फ़ाक़ा (भूखे रहा) करते हों उसके पास लाए जाएँ। जब वे लाए जाते तो वह उनमें से प्रत्येक को कुछ-न-कुछ देता और उन्हें क़स्में देकर नसीहत करता कि जब उनके पास खाने-पीने को कुछ न रहे या उन पर कोई अत्याचार करे तो वे यहाँ आकर न्याय की ज़ंजीर, जो बाहर लटकी हुई है, हिलाएँ ताकि वह उनके साथ न्याय कर सके, नहीं तो प्रलय के दिन उनकी फ़रियाद का बोझ वह सहन नहीं कर सकेगा।

ग़ियासुद्दीन बलबन के बारे में मौलाना ज़ियाउद्दीन बर्नी ने लिखा है कि

वह दान, अनुदान, पुरस्कार एवं न्याय करने में भाइयों, लड़कों और रिश्तेदारों का बिलकुल ख़याल नहीं करता था और जब तक मज़लूम (पीड़ित) के साथ न्याय न कर लेता, उसके दिल को आराम व शान्ति नहीं पहुँचती। उसके न्याय और इनसाफ़ के क़िस्से बहुत प्रसिद्ध हैं। उस काल के हिन्दुओं ने भी खुले दिल से उसकी हुकूमत की प्रशंसा की है। 1337 विक्रमी तदनुसार सन् 1280 ई॰ का एक संस्कृत शिलालेख पालम में मिला है, जिसमें लिखा है कि बलबन के राज्य में खुशहाली है। उसकी बड़ी और अच्छी हुकूमत में ग़ौर से ग़ज़ना और द्रविड़ से रामेश्वरम् तक हर जगह ज़मीन पर बहार-ही-बहार की मोहकता फैली है। उसकी सेना ने ऐसा अमन व शान्ति स्थापित की है, जो हर व्यक्ति को प्राप्त है। सुलतान अपनी प्रजा की देखभाल इतने अच्छे तरीक़े से करता है कि खुद विष्णु दुनिया की चिन्ता से मुक्त होकर दुग्ध-सागर में जाकर सो रहे हैं।

मुग़लकाल से पूर्व के दिल्ली के मुस्लिम बादशाहों ने न्याय व इनसाफ़ की जो परम्परा स्थापित की, उसे मुग़ल बादशाहों ने और भी शानदार तरीक़े पर बरक़रार रखा। बाबर ने अपनी "तुजुक" (शाही रोज़नामचे) में स्वयं लिखा है कि उसकी सेना भीरह से गुज़र रही थी, तो उसे मालूम हुआ कि सिपाहियों ने भीरहवासियों को सताया है और उनपर हाथ डाला है, तो तुरन्त उन सिपाहियों को गिरफ़्तार करके कुछ की नाकें कटवाकर और कुछ को मृत्यु की सज़ा देकर सबको उनकी करतूतों के बारे में बताया।

(इस्लाम, मुसलमान और ग़ैर-मुस्लिम)

मानव-समाज की भलाई और कामयाबी के लिए ईश्वरीय ग्रन्थ क़ुरआन द्वारा प्रस्तुत न्याय और उसके सिद्धान्त को त्याग देने के कारण आज मानवता सिसक रही है, क्योंकि न्याय और इनसाफ़ के दरवाज़े निर्धनों तथा निर्बलों के लिए बन्द हो चुके हैं। अब जब तक उनको फिर से नहीं खोला जाएगा, उस समय तक समाज को सिसकना पड़ेगा। हो सकता है कि एक दिन यह सिसकी भी बन्द हो जाए और मानवता सदा के लिए दम तोड़ दे।

नशाख़ोरी के विरुद्ध हैं इस्लामी शिक्षाएँ

■ मौलाना अबुल-लैस इस्लाही नदवी

धार्मिक ग्रन्थ क़ुरआन मजीद में शराब को बिलकुल ही हराम (निषिद्ध) और नापाक कहा गया है और यह स्पष्ट करने के लिए कि इससे बचना उन लोगों के लिए अत्यन्त आवश्यक है जो ईश्वर में विश्वास रखते हों, मुसलमानों को 'ऐ वे लोगो जो ईमान लाए हो' कहकर सम्बोधित करते हुए उन्हें इससे दूर रहने की ताकीद की गई है और इसे कल्याण एवं सफलता का मार्ग कहा गया है—

"ऐ ईमान लानेवालो, यह शराब और जुआ और ये (झूठे देवी-देवताओं के) थान और पाँसे, शैतान के गन्दे कामों में से हैं, अतः इनसे बचो ताकि तुम सफल हो सको।"

(क़ुरआन, सूरा-5 माइदा, आयत-90)

इसके आगे शराब और जुए दोनों की ख़राबियों की ओर इन शब्दों में ध्यान दिलाया गया है—

"शैतान तो यही चाहता है कि शराब और जुए के द्वारा तुम्हारे बीच शत्रुता और द्वेष पैदा कर दे, और तुम्हें ईश्वर की याद और नमाज़ से रोक दे। फिर क्या तुम बाज़ आ जाओगे?"

(क़ुरआन, सूरा-5 माइदा, आयत-91)

और कहा गया कि अल्लाह और उसके पैग़म्बर के आज्ञापालन का तक़ाज़ा यह है कि इन हानिकारक चीज़ों से बचा जाए, अतएव चेतावनी के रूप में आगे कहा गया है—

"अल्लाह का आदेश मानो और रसूल का आदेश मानो, और (इन चीज़ों से) बचते रहो। यदि तुमने (हुक्म मानने से) मुँह मोड़ा, तो जान लो कि हमारे रसूल (पैग़म्बर) पर केवल स्पष्ट रूप से पहुँचा देने ही की ज़िम्मेदारी थी।" (क़ुरआन, सूरा-5 माइदा, आयत-92)

क़ुरआन की इन आयतों में शराब के लिए मूल शब्द 'ख़म्र' का प्रयोग

किया गया है जो विशेष रूप से विचारणीय है। 'ख़म्र' अरबी भाषा का शब्द है जिससे अभिप्रेत हर वह चीज़ है जो बुद्धि पर परदा डाल दे। इस शब्द की यही व्याख्या दूसरे ख़लीफ़ा हज़रत उमर (रज़ि॰) ने अपने एक ख़ुत्बे (धार्मिक अभिभाषण) में की थी—

"ख़म्र उस चीज़ को कहते हैं जो बुद्धि पर परदा डाल दे।"

इस व्याख्या से जहाँ यह बात स्पष्ट होती है कि शराब बुद्धि को भंग करती है, वहीं इससे यह भी मालूम होता है कि इस्लाम ने किसी विशेष प्रकार की शराब ही को हराम नहीं किया है, बल्कि इसके अन्तर्गत हर वह चीज़ आ जाती है जो नशावर हो और मनुष्य की सोचने-समझने की शक्ति को नष्ट करे या उसे क्षति पहुँचाए।

इस अवसर पर इस बात को भी ध्यान में रखने की ज़रूरत है कि मनुष्य का जिस चीज़ के कारण समस्त प्राणियों में विशिष्ट और प्रतिष्ठित एवं केन्द्रीय स्थान दिया गया है, वह वास्तव में उसकी सोचने-समझने और सत्य-असत्य और भले-बुरे में अन्तर करने की क्षमता है। अब यह स्वाभाविक बात है कि जिस चीज़ या काम से मनुष्य की इस क्षमता और योग्यता को आघात पहुँचता हो या उसके पूर्ण रूप से क्रियाशील होने में बाधा उत्पन्न होती हो, उसको मनुष्य का निकृष्टतम शत्रु समझा जाए। शराब चूँकि मस्तिष्क को स्वाभाविक रूप से कार्य करने में रुकावट डालती और उसकी तर्कशक्ति को शिथिल करके मनुष्य को मानवता से ही वंचित कर देती है, इसलिए उसे मनुष्य का सबसे बड़ा शत्रु घोषित करना बिलकुल उचित ही है।

शराब पैग़म्बरे-इस्लाम की दृष्टि में

क़ुरआन मजीद में शराब के विषय में जो कुछ कहा गया है उसका स्पष्टीकरण अल्लाह के रसूल हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) के बहुत से कथनों से भी होता है। आप (सल्ल॰) ने कहा है—

"प्रत्येक मादक चीज़ 'ख़म्र' है और प्रत्येक मादक चीज़ हराम है।"

आप (सल्ल॰) ने यह भी कहा है—

> "हर वह पेय जो नशा पैदा करे, हराम है और मैं हर मादक चीज़ को वर्जित करता हूँ।"

शराब की हानि और ख़राबी के सिलसिले में इस्लाम के दृष्टिकोण का अनुमान इससे भी किया जा सकता है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

> "अल्लाह ने लानत की है, शराब पर, उसके पीनेवाले पर, पिलानेवाले पर, बेचनेवाले पर, उसको ख़रीदनेवाले पर और उसे निचोड़नेवाले पर और जिसके लिए वह निचोड़ी जाए उस पर, उसे उठाकर ले जानेवाले पर और उस पर भी जिसके पास वह ले जाई जाए।"

शराब के सिलसिले में इस्लाम की सख़्ती का यह हाल है कि एक व्यक्ति ने नबी (सल्ल॰) से पूछा, "क्या दवा के रूप में उसे प्रयोग में लाने की इजाज़त है?" तो आप (सल्ल॰) ने कहा, "शराब दवा नहीं बल्कि बीमारी है।"

एक सहाबी जो हिमियर के रहनेवाले थे, कहते हैं कि मैंने नबी (सल्ल॰) से निवेदन किया कि 'हम एक ऐसे क्षेत्र के रहनेवाले हैं कि जो अत्यन्त ठण्डा है और हमें मेहनत भी बहुत करनी पड़ती है। हम लोग एक प्रकार की शराब बनाते हैं और उसे पीकर थकावट और ठण्डक का मुक़ाबला करते हैं।' आप (सल्ल॰) ने पूछा, "जो चीज़ तुम पीते हो वह नशा करती है?" मैंने कहा, "हाँ", आप (सल्ल॰) ने कहा, "तो फिर उससे परहेज़ करो।" मैंने निवेदन किया, "किन्तु हमारे इलाक़े के लोग नहीं मानेंगे।" तो आप (सल्ल॰) ने कहा, "यदि वे न मानें तो उनसे युद्ध करो।"

शराब के सिलसिले में इस्लाम का एक नियम यह भी है कि नशीली चीज़ को कम-से-कम मात्रा में भी इस्तेमाल करने की इजाज़त नहीं है। यह मानव-दुर्बलता की दृष्टि से एक बुद्धिसंगत बात है, क्योंकि शराब के विषय में जहाँ यह बात सत्य है कि मुँह को लग जाए तो बड़ी मुश्किल से छूटती

है, वहीं यह बात भी सत्य है कि इसमें किसी सीमा का निर्धारण बहुत मुश्किल है, क्योंकि सीमा का निर्धारण बुद्धि ही करेगी और वह शराब के प्रभाव से शिथिल हो जाती है।

अल्लाह के नबी (सल्ल॰) कहते हैं—

> "जिस चीज़ की अधिक मात्रा नशा पैदा करे, उसकी थोड़ी मात्रा भी हराम है।"

इस सिलसिले में यह बताना भी आपकी दिलचस्पी की चीज़ होगी कि किस तरह इस्लामी समाज में शराबन्दी का क़ानून लागू हुआ। नशाबन्दी की संजीदा कोशिश के लिए यह विभिन्न पहलुओं से मार्गदर्शक सिद्ध हो सकता है।

शराब के विषय में इस्लाम के क्रमिक आदेश

हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) का आविर्भाव हुआ तो उस समय अरब-समाज इतना बिगड़ चुका था कि जीवन में भोग-विलास की जो सामग्री भी प्राप्त हो सकती थी उससे आनन्द लेना और आज़ादी के साथ शराब पीना लोगों के दैनिक जीवन में शामिल हो चुका था। इस्लाम ने लोगों के समक्ष एक स्वस्थ और पवित्र जीवन की जो कल्पनाएँ उजागर करनी आरम्भ की थीं उससे प्रभावित होकर बहुतों के मन में स्वयं ही शराब और जुए के विषय में प्रश्न उठने लगे थे कि इनके सिलसिले में सही दृष्टिकोण क्या हो सकता है? अतएव क़ुरआन ने उनके इस प्रश्न को लेते हुए इसका उत्तर इन शब्दों में दिया—

> "लोग आप से शराब और जुए के विषय में पूछते हैं। कह दीजिए कि इन दोनों में बड़ा गुनाह है और यद्यपि इनमें लोगों के लिए कुछ लाभ भी हैं, किन्तु इनका गुनाह इनके लाभ से कहीं अधिक हैं।" (क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, आयत-219)

यह शराब और जुए के सम्बन्ध में पहला आदेश था। जिसमें इनके बारे में केवल अप्रियता व्यक्त करके छोड़ दिया गया ताकि लोगों के मन और मस्तिष्क इनके निषेध को स्वीकार करने को तैयार हो जाएँ। बहुत-से

मुसलमान तो शराब के बारे में इस पहली ही टिप्पणी के बाद शराब से परहेज़ करने लगे थे, मगर चूँकि इसमें स्पष्ट रूप से शराब के वर्जित होने की घोषणा नहीं की गई थी, इसलिए बहुत से लोग पूर्ववत् मद्यपान करते रहे, यहाँ तक कि कभी-कभी नशे की हालत में नमाज़ पढ़ने खड़े हो जाते थे और नमाज़ में कुछ-का-कुछ पढ़ जाते थे। अतः कुछ दिनों के पश्चात यह आदेश आया—

> "ऐ वे लोगो जो ईमान लाए हो, नशे की हालत में नमाज़ के क़रीब न जाओ। नमाज़ उस समय पढ़नी चाहिए जब तुम यह जानो कि नमाज़ में क्या कह रहे हो।" (क़ुरआन, सूरा-4 निसा, आयत-43)

इसका प्रभाव यह हुआ कि लोगों ने शराब पीने का समय बदल डाला और ऐसे समय में शराब पीनी छोड़ दी जिसमें यह आशंका हो कि नशे की हालत में कहीं नमाज़ का समय न आ जाए। इसके कुछ समय के बाद शराब के निषेध का वह स्पष्ट आदेश आ गया जिसका उल्लेख आरम्भ में हम कर चुके हैं। उस आदेश का पालन इस प्रकार किया गया कि जिसके पास भी शराब थी उसने मदीना की गलियों में बहा दी।

अरब-समाज में जुए और शराब की गणना दानशीलता के श्रेष्ठ कामों और सहानुभूति की प्रेरणादायक चीज़ों में होती थी। अतः जब ग़रीबों पर ख़र्च करने के सम्बन्ध में आयतें उतरीं, तो लोगों के मन में यह प्रश्न उठा कि जब इस्लाम ग़रीबों पर ख़र्च करने पर इतना ज़ोर देता है, तो शराब और जुए में क्या ख़राबी है जिनके द्वारा ग़रीबों को एक प्रकार से सहायता पहुँचती है? इस प्रश्न के उत्तर में वह आयत अवतरित हुई और यह स्पष्ट कर दिया गया कि जो चीज़ें नैतिक दृष्टि से हानिकारक हैं यदि उनसे कोई लाभ देखने में होता भी हो, जब भी उनके हानि के पहलू बढ़े होने के कारण उनसे परहेज़ करना अनिवार्य है।

ख़ूबसूरत विचारों का गुलदस्ता है : इस्लाम

■ शशिप्रभा शर्मा

इस्लाम धर्म के निहितार्थ हैं—कोई भी सन्दर्भित विषय हो उसमें नैतिकता, ईमानदारी, सद्‌भाव, शान्ति, सुगमता, मानवीय मूल्यों की सुरक्षा, सहानुभूति, कर्तव्यपरायणता, पवित्रता, सहयोग-सहायता, परोपकार, सेवा, स्नेह, संयम-नियम, धैर्य, सफ़ाई-सुथराई, मित्रता, विशेष रूप से समाज में अपनी प्रासंगिकता बनाएँ—ऐसा इस्लाम के विषय में अध्ययन के पश्चात मुझे आभास हुआ है।

प्रस्तावित विषयों में से आप किसी भी विषय पर इस्लाम की शिक्षाओं को यदि निष्पक्ष रूप से व्यवहार में लाएँ तो समाज में जो अन्धविश्वास, रूढ़िवादिता, वैचारिक प्रदूषण, विस्तृत रूप से वर्ग विशेष धर्म के प्रति व्याप्त है उनपर विराम लगकर सम्पूर्ण विश्व में शान्ति और प्रेम की धारा जन-जन से उत्सर्जित होने लगेगी। अत्याचार, उत्पीड़न, भेदभाव, वैमनस्य, नफ़रत और प्रतिशोध की भावनाएँ समाज से तिरोहित (विलुप्त अदृश्य) हो जाएँगी। ज़रूरत तो समझदारी की है।

उच्च नैतिकता : उच्च नैतिकता का इस्लाम से उसी प्रकार सम्बन्ध है जैसे शरीर और आत्मा का। जैसे आत्मा के बिना शरीर का कोई अस्तित्व नहीं है; वैसे ही नैतिकता बिना इस्लाम निरर्थक है। नैतिकता का अर्थ है हर व्यक्ति से सद्‌व्यवहार करना। कोई क्रोध दिलाए तो उसे क्षमा कर दें। मन-कर्म-वचन से किसी का मन न दुखाएँ, किसी से ईर्ष्या, किसी के माल पर लालच, किसी की बुराई, गाली, मार-पीट करके किसी को न सताएँ। वादा करके निभाएँ, घमण्ड न करें, न्यायसंगत व्यवहार करें। सत्यता एवं निष्पक्षतापूर्ण व्यवहार करें।

ईश्वर के प्रति आस्था रखते हुए बुरे कर्मों से डरकर आख़िरत पर ईमान लाएँ। जो ईश्वर के समीप होगा उसे उससे डर ज़रूर होगा और जब डर होगा तो बुरे कर्म नहीं करेगा और नैतिकता ऐसे व्यक्ति के साथ हमेशा रहेगी। इसके साथ ही नैतिकता का उच्च प्रारूप कन्या-भ्रूण हत्या न करना,

ब्याज न लेना-देना, माता-पिता और रिश्तेदारों तथा पड़ोसियों से अच्छे सम्बन्ध, ग़रीबों की सहायता, उपहारों के आदान-प्रदान में सतर्कता, सम्मान-सत्कार की भावनाएँ, हर धर्म के व्यक्ति के साथ न्याय, दहेज़, शराब-जुआ, मानवाधिकारों की रक्षा करना इस्लाम धर्म की वे प्रमुख बातें हैं जो इस्लाम को वरीयता एवं उच्च नैतिकता प्रदान करती हैं। निस्सन्देह यदि शान्त मन से इनको आत्मसात कर लें तो समस्त मानव सुख-शान्ति के समाज में रहेगा और शान्ति बाहर से नहीं, बल्कि आन्तरिक विचारों का दर्पण है जो आचार-विचारों से झलकती है।

OOO